तृतीय अध्याय

3. संगीत मकरंद में वर्णित अवनद्ध वाद्यों का अध्ययन

भारतीय संगीत की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि इनती वृहद और विशाल है, कि इसके आरंभ कि खोज अकल्पनीय है, क्योकि संगीत देवताओं द्वारा निर्मित है, जिसको वेदों, पुराणों, उपनिषदों के द्वारा ही समझा व देखा जा सकता है। भारतीय संस्कृति मे शोध, अनुसंधान का कार्य अति प्राचीन काल से ऋषि मुनियों द्वारा निरन्तर किया जाने वाला कार्य रहा है। ऋषि मुनियों के द्वारा किए गए अनुसंधान व उनकी गहरी सोच से उत्पन्न कई शोध हमारे इतिहास मे विधमान है। संगीत व संगीत के इतिहास के विषय मे "स्वामी प्रज्ञानन्द जी द्वारा उनकी पुस्तक संगीत व संस्कृति के द्वितीय भाग की भूमिका मे यह उल्लेख प्राप्त होता है कि" भारतीय संगीत के इतिहास का रचना काल अभी भी सामने नहीं आया है। इतिहास अतीत की प्रत्येक सूक्ष्म अति सूक्ष्म घटनाओं का निरपेक्ष परिचय देने वाला अग्रदूत है।

कोई भी तथ्य इतिहास कि दृष्टि से उपेक्षणीय नही है। आज भी संगीत की प्राचीन असंख्य पांडुलिपियाँ यत्र-तत्र अप्रकाशित पड़ी हुयी है। जब तक विद्वानों द्वारा अनुशीलन एवं औचित्य पूर्ण प्रकाशन न हो जाये तब तक भारतीय संगीत के पूर्ण इतिहास कि रचना संभव नहीं है।[1] जितने ग्रंथ वर्तमान मे उपलब्ध है ऐसा नही है, की इतने ही ग्रंथ रचे गये हों कुछ हस्तलिखित ग्रन्थ व पांडुलिपियाँ सुरक्षित कर ली गयी तथा कुछ ग्रंथ संभवत: काल के गर्भ मे लुप्त हो गये। वैदिक काल से ही भारतीय संगीत मे वाद्यों की परंपरा अति विस्तृत रही है, जिसके आधार पर यह कहा जा सकता है, कि वैदिक काल मे संगीत की शास्त्रीय व उपशास्त्रीय विधायें प्रतिष्ठित हो चुकी थी, तथा वाद्यों की परंपरा भी साहचर्य व स्वतंत्र रूप से प्रतिष्ठित हो चुकी थी। शास्त्रीय संगीत मे रंजकता व सौंदर्यता उत्पन्न करने हेतु वाद्यों का निर्माण इस काल मे हो चुका था। जिससे यह प्रतीत होता है, कि गायन के साथ वादन का भी इतिहास अनादिकाल से विधमान है। प्राचीन उपलब्ध साहित्य वैदिक वाङ्मय के आधार पर यह अनुमान लगाया जा सकता है, कि भारतीय संगीत की परम्परा सौ दो सौ वर्षो से नहीं अपितु प्रणयकाल से ही देवताओं व वेद, पुराण,उपनिषद से जुड़ी हुई है। जिसका उल्लेख गायन के साथ साथ संगत वाद्यों के रूप मे अवनद्ध वाद्यों का वर्णन वैदिक साहित्य तथा ऋग्वैदिक काल से वंशी, वेणु, वीणा, शंख, दर्दुर, गोधा, वाण आदि अनेक वाद्यों का उल्लेख प्राप्त होता है। आहत नाद के रूप मे ध्वनि कंठ व वाद्यों द्वारा उत्पन्न होती है, जिसका वर्णन नारद कृत संगीत मकरंद के श्लोक में प्राप्त होता है।

---

(1) सेन, अरुण कुमार/भारतीय तालों का शास्त्रीय विवेचन/पृष्ठ-3

सोऽप्याहतः पञ्चविधो नादस्तु परिकीर्तितः।

नखवायुजचर्माणि लोहशारीरजास्तथा ॥

नखं वीणादयः प्रोक्ता वंशाद्या वायुपूरकाः।

चर्माणि च मृदङ्गाद्या लोहास्तालादयस्तथा ॥[1]

अर्थात्-संगीत मकरंद के दिये गए श्लोक मे तत् का सम्बोधन नखज, सुषिर का सम्बोधन वायुज, अवनद्ध का सम्बोधन चर्मज तथा घन का सम्बोधन लोहज किया गया है। इसके उपरांत शरीर से उत्पन्न होने वाली ध्वनि के लिए नवीन शब्द शरीरज प्रयोग उस गायन के लिए किया गया है जिसका स्त्रोत कंठ है। नाखून, वायु, चमड़ी, लोहे और शरीर से उत्पन्न होने वाला आहत संज्ञक नाद पाँच प्रकार का होता है।

पूर्वकाल मे नख अर्थात् नाखून से वीणा आदि तंत्री वाद्य का वादन किया जाता था। जो पूर्वकाल के पश्चात मिज़राब व गज से किया जाने लगा। वायु के आघात से वंशी आदि वाद्यों को वंशज श्रेणी मे रखा गया, चमड़े से बने अवनद्ध वाद्य मृदंग आदिको चर्मज श्रेणी मे रखा गया, तथा लोहे व धातु से बनाए गए वाद्य यंत्र करताल आदि वाद्यों को लोहज की श्रेणी मे रखा गया। ऐतिहासिक दृष्टि से ग्रन्थों मे उपलब्ध साक्ष्यों व तथ्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है, कि संगीत मे ध्वनि व लय कि दृष्टि से वाद्यों का विस्तृत भंडार विधमान है, अति प्राचीन काल से ही वाद्यों के विषय मे वर्णन प्राप्त होता रहा है। वेद, पुराण, उपनिषद तथा महाकाव्यों मे विभिन्न स्थानों मे दुंदुभि के साथ और भी वाद्यों का प्रयोग देखने को मिलता है। जैसे-जैसे वाद्यों का विकास क्रम आगे बढ़ता गया, अवनद्ध वाद्य ऊर्ध्वमुखी से पार्श्वमुखी की तरफ बढ़ते गए जिसका वर्णन सर्वप्रथम नाट्यशास्त्र में त्रिपुष्कर वाद्यों के रूप में ऊर्ध्वमुख जोड़ी ऊर्ध्वक व आलिंग्य तथा पार्श्वमुखी आंकिक वाद्य का वर्णन प्राप्त होता है।[2] वाद्यों के विकास की परंपरा आदि काल से कभी सहायक वाद्यों के रूप में तो कभी स्वतंत्र वाद्यों के रूप में वाद्यों का वादन क्रम चला आ रहा है।

जो बाद मे वर्गों में विभाजित हुए जिससे स्वर व लय वाद्य भी कहा गया काल मापने वाले वाद्यों को पहले घन वाद्यो की श्रेणी में रखा जाता था, जो कालांतर में अवनद्ध वाद्यों के रूप में प्रचार में आये अवनद्ध वाद्यों पर बोलो को काष्ट की छड़ी अथवा हाथों की आघात द्वारा निकाला जाता था। विभिन्न तरह के पटाक्षरों का निर्माण तथा पटाक्षरों का वादन वाद्य के अनुसार अक्षर का निर्माण किया गया वाद्यों पर बजाने वाले पटाक्षरों को छंदो पर आधारित करते हुए ताल लय की गति के अनुसार बनाया गया ।

---

(1) नारद विरचित: संगीत मकरंद/संगीतध्याय/प्रथम पाद/श्लोक-7-8/ पृष्ठ-2

(2) जौहरी, रेणु/साम/पृष्ठ-87

गीतं वाद्यं च नृत्यं च त्रयं संगीतमुच्यते।

नारदेन कृतं शास्त्रं मकरन्दाख्यमुत्तमम् ॥[1]

अर्थात् संगीत का समन्वयय गीत वाद्य व नृत्य के साथ होता है। जिसको महर्षि नारद द्वारा संगीत मकरंद में स्पष्ट किया गया है। इस अध्याय में शोधार्थी द्वारा वाद्यो का विस्तृत वर्णन करने का प्रयास किया गया है। भारतीय संगीत में आदि काल व प्राचीन काल से वाद्यों का उपयोग देखा जा रहा है। पुराणों की कथानुसार ऐसा माना जाता है, कि सत्ययुग में महादेव के साथ त्रिपुरासुर का युद्ध हुआ और युद्ध में त्रिपुरासुर के वध के पश्चात उसके रक्त से जो कीचड़ उत्पन्न हुआ उसे ब्रह्मा जी ने मृदंग का आकार दिया और उसकी खाल (चर्म) को मृदंग के मुख पर आच्छादित किया और उसकी अस्थियों द्वारा मृदंग को सुर मे मिलाया। ब्रह्मा के आदेश के अनुसार सर्वप्रथम गणेश जी द्वारा इस त्रिपुरसुर के रक्त, चर्म व अस्थियो से निर्मित मृदंग का वादन कर ताल बजाया ।[2]इस प्रकार यह कहा जा सकता है, कि वाद्यों का उल्लेख भारतीय संस्कृति साहित्य के आधार पुराणों में मिलता है। वेद, पुराण, उपनिषद आदि ग्रंथो में वाद्यों के प्रकार व वर्णन को देखा जा सकता है। भारतीय संगीत में आदि काल से वाद्यों को प्राय: चार भागों में बांटा गया है। तत्, घन, सुषिर, अवनद्ध जो वाद्य स्वर पर आधारित होता है उन्हे तत् व सुषिर वाद्यों की श्रेणी मे रखा जाता है, तथा जो वाद्य लय पर आधारित होते है, उनको घन व अवनद्ध वाद्यों की श्रेणी मे रखा जाता है। वाद्यों की बाहरी बनावट मे अंतर होता है परंतु स्वर मे लय तथा लय मे स्वर अंतर्निहित है। यह बाहरी स्वरूप से भिन्न होते है, परंतु मूल एक मे ही निहित है ।

तत् वाद्य (String Instruments**)**-वाद्यो के वर्गीकरण में तत् वाद्यो में वाद्यआते हैं जिन्हें उपवर्गो में भी बांटा जाता है । जिनमें वादन क्रिया, बनावट, ढांचे के आकार, रखरखाव की विधि के अनुसार विभाजित किया गया है।[3]

- जिन वाद्यो को उंगलियों से बजाया जाता है, जो प्राय: तार से स्वर उत्पन्न होने वाले वाद्य है। जैसे- स्वरमंडल, तंबूरा इत्यादि वाद्यो को या उनके एक भाग को गोद में लिटा कर बजाया जाता है।
- जिन वाद्यो को किसी कोण,त्रिकोण, मिज़राब की सहायता से बजाया जाता है। जिनमें सितार ,सरोद, विणा, गोटूवाद्यम् आदि वाद्य है। इन वाद्यो को गोद में व पैर के ऊपर से टीका कर तिरछा रख कर बजाया जाता है।

---

(1) नारद विरचित: संगीत मकरंद/संगीतध्याय/प्रथम पाद/श्लोक-3/पृष्ठ-1

(2) सेन, अरुण कुमार/भारतीय तालों का शास्त्रीय विवेचन/पृष्ठ- 141

(3) मिश्र, लाल मणि/भारतीय संगीत वाद्य/पृष्ठ16

- जिन वाद्यो को गज़या रगड़ कर बजाया जाता है । जैसे-सारंगी, इसराज, दिलरुबा इत्यादि इन वाद्यो को गोद में रखकर या कंधे के सहारे से बजाया जाता है ।
- जिन वाद्यो का डंडी या डंडी के प्रहार से वादन किया जाता है जैसे- संतूर इत्यादि यह वाद्य सामने रखकर बजाए जाते है।

तत् वाद्यो में विभिन्न वाद्य आते है जिन्हें स्थिति व रख रखाव के अनुसार अलग-अलग श्रेणीयों में रखा जाता है। वाद्यो की बनावट भी अलग-अलग प्रकार से होती है। एक व दो तुम्बे वाले वाद्य,लंबी गर्दन या डांटवाले वाद्य ,छोटी गर्दन व छोटी आकृति वाले वाद्य इन वाद्यो में कुछ विदेशी वाद्य भी आते है। जैसे- वायलन,मैनडोलियन इत्यादि इन वाद्यो की बनावट भिन्न होती है, तुम्बे व तबली में चमड़ा मढ़ा हुआ होता है।

सुषिर वाद्य-(Wind Instruments **)**सुषिर वाद्य वादन क्रिया की द्रष्टि से उपभेद मे बंटा गया जिनमे सादे बने हुए वाद्य, पत्तेदार वाद्य, चाभी दार वाद्य घुमावदार वाद्य, रीड़ लगे वाद्य इत्यादि आते है।[1] जिन वाद्यों को फूँक कर बजाया जाता है, इनकी बनावट सरल होती है वादन के लिए मुँह से फूँका जाता है। इनमे एक छिद्र होता है, जिससे स्वर निकास किया जाता है तथा उँगलियो से छिद्र के पोर को खोला व बंद किया जाता है। जैसे-वंशी, मुरली, पविका इत्यादि वाद्य इस श्रेणी में आते है।

- जिन वाद्यो की बनवाट सरल व पत्तीदार होती है जिनमे स्वर छिद्र पर एक विशेष बनावट वाली पत्ती लगी होती है, जिसकी सहता से उसमे मुँह से फूँका जाता है, और उंगली की पोरो की सहायता से स्वर निकास होता है । जैसे शहनाई ,नागस्वर इत्यादि।
- इन वाद्यो का बाहरी मुख फूलदार बना हुआ और फैलाव लिए होता है, जिससे इन वाद्यो की ध्वनि अलग होती है।
- वह वाद्य घुमावदार व पीतल के होते है इनको भी फूँक से बजाया जाता है जैसे- ट्रम्पपैड इन वाद्यो का प्रयोग भारतीय बैंड बारात मे बड़ चड़ के किया जाता है । जिन वाद्य की बनावट मे रीड़ लगी हुयी होती है तथा प्रत्येक स्वर के लिए पीतल की रीड़ लगाई जाती है यह वाद्य फूँक से नहीं बल्कि हवा के दवाब से बजाये जाते है। जैसे- हारमोनियम, हरमोंनिका, स्वरपेटी इत्यादि।

घन वाद्य- घन वाद्यों का वर्णन अति प्राचीन काल से वेद, पुराण, ग्रन्थों मे विभिन्न स्थानो मे देखने को मिलता है।

---

(1) मिश्र, लाल मणि/भारतीय संगीत वाद्य/पृष्ठ-17

- वाद्यो की इस श्रेणी मे वह वाद्य आते है जिनको ठोकर या आघात से बजाया जाता है। इस श्रेणी मे वे सभी वाद्य आते है, जो प्राय कांसा , पीतल ,लकड़ी के बने हुए होते है, तथा कांसे से बने वाद्यो मे अधिक सुंदरता से ध्वनि उत्पन्न होती है । वादन की दृष्टि से घन वाद्यों को दो वर्गो मे विभाजित किया गया है ।
- वह वाद्य जिनमे दो हिस्से होते है, और जिनका वादन आपस मे टककरा कर किया जाता है जैसे – झांझ, मंजीरा, कठताल, क्रमिका इत्यादि ।[(1)]
- वह वाद्य जिनका वादन किसी मुलायम वस्तु से बनी डंडी या लकड़ी के प्रहार से किया जाता है । जैसे- घंटा, जय घंटा, विजय घंटा, गांग, गेमलन इत्यादि ।[(2)]
- वह वाद्य जो भीतर से खोखले व पोले होते है, तथा ध्वनि उत्पन्न करने के लिए इनमे कंकड़ या रेत को भरा जाता है। इस वर्ग के वाद्य है- झुनझुना, रम्भा इत्यादि।
- घन वाद्यों की श्रेणी मे ऐसे भी वाद्य आते है, जिनको किसी भी निश्चित श्रेणी मे रखना आसान नही है । क्योकि यह वाद्य ध्वनि और बनावट मे भिन्न भिन्न होते हैं ।

अवनद्ध वाद्य(Percussion Instruments**)-** इस वाद्य श्रेणी मे वह वाद्य आते है, जो अंदर से पोले चर्माच्छादित होते है, जो मृदा, धातु, काष्ट आदि द्वारा निर्मित होते है। इन वाद्यो मे हस्तघात व किसी वस्तु के प्रहार द्वारा वादन किया जाता है। इन अवनद्ध वाद्यों को आनद्ध व वितत भी कहा जाता है। वादन व बनावट की दृष्टि से अवनद्ध वाद्यो को विभिन्न भागो मे बांटा गया है ।

- अवनद्ध वाद्यो की बनावट मे मिट्टी, लकड़ी व धातु (पीतल, लोहे) का प्रयोग किया जाता है। इन वाद्यों मे भीतर अधिक स्थान होता है। जिससे वायु द्वारा ध्वनि का सृजन होता है।
- अवनद्ध वाद्य मे काष्ट, आम ,खैर आदि पेड़ो की लकड़ी को श्रेष्ठ माना जाता है।
- धातु मे तांबा, पीतल, व मिश्रित घातु के पात्रो से बनाया जाता है। इन सभी बनावट का इसलिए प्रयोग होता है, जिससे नाद शुद्ध उत्पन्न हो।
- अवनद्ध वाद्यो मे विभिन्न प्रकार के वाद्य आते है, भीतर से खोखले और दोनों मुख से मढ़े हुये [(3)] वह वाद्य जो पोले होते थे, परंतु एक मुख बंद व एक मुख मढ़ा हुआ होता है। वह वाद्य जो खोखले होते है। दो मुँह होते है, परंतु एक मुख मढ़ा हुआ तथा दूसरा मुह खुला रहता है। तथा वह वाद्य जो लकड़ी के गोलाकार चार से

(1) मिश्र, लाल मणि/भारतीय संगीत वाद्य/पृष्ठ-18
(2) मिश्र, लाल मणि/भारतीय संगीत वाद्य/पृष्ठ-18
(3) मिश्र, लाल मणि/भारतीय संगीत वाद्य/पृष्ठ-17

छ: अंगुल की पट्टी व छल्ले मे घेरे रूप मे मढ़े होते है । डफ़, डफली, करचक्र, ख़ंजरी, दायरा, गंजीरा चंग इत्यादि ।[1]

- अवनद्ध वाद्यों की वादन विधि के अनुसार अलग-अलग श्रेणी मे विभाजित किया जाता है। जिन वाद्यो का वादन दोनों हाथो के पंजो व उँगलियो से बजाए जाने वाले वाद्य जैसे- पखावज, मृदंगम, ढोलक, खोल, नाल मादल, तबला इत्यादि। जिसे विविधता से भरपूर्ण होने के कारण तबला, पखावज, ढोलक को विशेष स्थान प्राप्त है।[2]
- वह वाद्य जिन्हे एक हाथ उँगलियो द्वारा आघात से बजाया जाता है-हुडुक, ख़ंजरी, दायरा इत्यादि ।
- वह वाद्य जिन्हे हाथ व वस्तु दण्डी,लकड़ी की सहता से बनाया जाता है जैसे- नगाड़ा,धौसा दमामा ढ़क इत्यादि ।
- वह वाद्य जो घुंडी के आघात से बजाया जाता है जैसे-डमरू, ढक्का इत्यादि ।
- अवनद्ध वाद्यो का प्रयोग व वर्णन अतिप्राचीन काल, आर्ष महाकाव्यों से प्राप्त होता है। ऐसा माना जाता है, कि प्राचीन काल मे अवनद्ध वाद्य संगीत का प्रयोग अन्य कार्यो के लिए भी किया जाता था। जैसे अवनद्ध वाद्य का प्रयोग राज्य घोषणा, शोभायात्रा, आपातकाल इत्यादि की जानकारी हेतु किया जाता था।
- भारतीय संस्कृति से जुड़े कई आदिवासी क्षेत्रो मे इनका प्रयोग होता था। चर्माच्छादित वाद्यो को बजाकर विभिन्न संकेत दिये जाते थे, तथा वादन कि ध्वनि से सभी को गोपनीय संदेश प्राप्त हो जाता था, तथा इससे एक बार मे सभी को दूर-दूर तक संदेश दिया जाता था। प्राचीन काल मे रात व दिन के समय बोध के लिए अवनद्ध वाद्य पर नौबत बजाया जाता था ।[3] भेरी नामक वाद्य कोणाकार चर्माच्छादित होता है। इसका वादन आपातकाल की स्थिति मे किया जाता था, जिससे सभी आपातकालीन स्थिति के लिए तैयार हो जाते थे।[4]

3:1 संगीत मकरंद के पूर्ववर्ती ग्रंथो में वर्णित अवनद्ध वाद्यों का अध्ययन

संगीत मकरंद का काल 7वीं शताब्दी से 10वीं शताब्दी के मध्य माना जाता है, जिसका वर्णन विस्तृत रूप से प्रथम अध्याय मे किया जा चुका है। जिसके आधार पर पूर्ववर्ती ग्रंथो मे वर्णित अवनद्ध वाद्यो की चर्चा की जा रही है। अवनद्ध वाद्यों का वर्णन वेद काल या अति प्राचीन काल से प्राप्त होता है। भारतीय संस्कृति के आधार स्तम्भ वेद, पुराण, उपनिषदों में वर्णन प्राप्त होता है। अवनद्ध वाद्यों का प्रत्येक काल मे विस्तृत

---

(1) मिश्र, लाल मणि/भारतीय संगीत वाद्य/पृष्ठ17
(2) मिश्र, लाल मणि/भारतीय संगीत वाद्य/पृष्ठ16
(3) सेन, अरुण कुमार/भारतीय तालों का शास्त्रीय विवेचन/पृष्ठ 140
(4) सेन, अरुण कुमार/भारतीय तालों का शास्त्रीय विवेचन/पृष्ठ 140

रूप से वर्णन होता है। कोई भी काल वाद्यों के वर्णन से अछूता नही रहा है, संहिता काल से वैदिक काल तथा महाकाव्यों मे भी अवनद्ध वाद्यों दुंदुभि, भूमि दुंदुभि, भेरी, पणव, पटह इत्यादि का वर्णन प्राप्त होता है।

3:1:1 ऋग्वेद- ऋग्वेद के **1.28.5** मंत्र मे दुंदुभि वाद्य का वर्णन प्राप्त होता है, तथा इसका प्रचलन अति प्राचीन काल से होता आया है।

यच्चिद्धि त्वं गृहेगृंह उलूंखलक युज्यसें।

इह द्युमत्तंमं वद जयंतामिव दुन्दुभिः॥[1]

निर्णय सागर संस्कारण पृष्ठ 73 अमरकोश व्याख्या सुधा मे **श्री भानु जी दीक्षित** द्वारा दुंदुभि शब्द की व्युत्पत्ति के बारे मे बताते हुये कहा है।**"दुन्द इति शब्देन भांति इति दुंदुभि"**अर्थात् जो ध्वनि से प्रकट की जाए वही दुंदुभि है। तथा जो नभ को ध्वनि से ओतप्रोत कर दे वह दुंदुभि है। अमरकोश मे दुंदुभि को भेरी वर्ग मे बताते हुये **भेर्यामानकदुंदुभी** कहा है। ऋग्वेद के छठे मण्डल के **6.47.29, 30, 31** मंत्रों मे दुंदुभि का पूर्ण विवरण प्राप्त होता है।

उपं श्वासय पृथिवीमुत द्यां पुंरुत्रा तें मनुतां विष्ठिंतं जगंत्।

स दुंन्दुभे सजूरिन्द्रेंण देवैर्दूराद्दवींयो अपं सेध शत्रून्॥[2]

अर्थात्- प्रार्थना करते हुये कहा जाता है कि हे! दुंदुभि वसुंधरा और व्योम को अपनी ध्वनि से भर दो जिससे चराचर वस्तु तेरे घोष मे अंतर्निहित हो जाए तथा अपने घोष से शत्रुओ का नाश कर दो क्योकि तुम देवों कि सहचर (सेवक)हो।

आ क्रंन्दय बलमोजों न आ धा निः ष्टंनिहि दुरिता बाधंमानः।

अपं प्रोथ दुन्दुभे दुच्छुनां इत इन्द्रंस्य मुष्टिरंसि वीळयंस्व ॥[3]

अर्थात्-प्रार्थना करते हुये यह कहा जाता है कि हे! दुंदुभि तुम इन्द्र कि बल शक्ति हो हमे बल प्रदान करो और उनका नाश करो जिनको हमे कष्ट फूचने मे सुख कि प्राप्ति है अपने घोष से हमारे शत्रुओ का नाश करो और हमे द्रढ बनाओ ।

आमूरंज प्रत्यावंर्तयेमाः केंतुमद्दुंदुभिर्वा वदीति।

समश्वंपर्णाश्चरंन्ति नो नरोऽस्माकंमिन्द्र रथिनों जयन्तु ॥[4]

---

(1) ऋग्वेद/सायणभाष्य-सहित/मंत्र 1.28.5
(2) ऋग्वेद/छठा मण्डल/ सायणभाष्य-सहित/मंत्र-29
(3) ऋग्वेद/छठा मण्डल/ सायणभाष्य-सहित/मंत्र-30
(4) ऋग्वेद/छठा मण्डल/ सायणभाष्य-सहित/मंत्र-31

अर्थात्-इन्द्र से प्रार्थना करते हुये कहते है कि हे! इन्द्र हमारी दुंदुभि हमारे अनुसार घोष करती है हमारे पशुओ को हमे वापस कर दो क्योकि हमारे नेतृत्वकर्ता घोड़े पर सवार होकर युद्ध मे विजय को प्राप्त करेंगे।

ऋग्वेद के 8.69.9 मंत्र मे गर्गर नामक अवनद्ध वाद्य का उल्लेख मिलता है-

अवं स्वराति॒गर्गरो॒ गो॒धा परिं सनिष्वणत् ।

पिड्.गा॒ परिं चनिष्कद॒दिन्द्रांय ब्रह्मोद्यंतम्॥ (1)

अर्थात्- ऐसा वाद्य जिससे गर्गर(गर-गर) ध्वनि उत्पन्न होती हो जो शत्रुओ के हृदय मे भय पैदा करती है जिसके वादन के लिए गोधा अर्थात् (चमड़े की वस्तु जो धनुष की प्रत्यंचा के आघात से बचने के लिए बांधा जाता है।) का प्रयोग किया जाता है। इसके नाम से यह स्पष्ट होता है, की इसके वादन से गरघड़ाहट उत्पन्न होती है। जो शत्रुओ के विनाश का घोष प्रतीत होता है।

3:1:2 यजुर्वेद- यजुर्वेद के तीसवें काण्ड के उन्नीसवें और बीसवें मंत्र में कुछ वाद्यों का वर्णन देखने को मिलता है।

प्रतिश्रुत्कायाऽअर्तनं घोाय भुषमाय बहुवादिनमनन्ताय मूक

शब्दाया॒डम्बरा॒घातं महसे वीणावादं क्रोशाय तूणध्यमवरस्पराय

शङ्खध्मं वनाय वन॒पमन्यतोरण्याय दापम्॥19॥(2)

आडम्बर भेरी वर्ग का अवनद्ध वाद्य माना गया है, अमरकोश के अनुसार इसका अर्थ "आ" उपसर्ग और (ड्बि) धातु के मिश्रण से बना है, जिसका अर्थ जो चारो ओर ध्वनि का घोष करना और जो घोष करे वो वाद्य आडम्बर है।

3:1:3 अर्थववेद- अर्थववेद मे वर्णित श्लोक मे दुंदुभि का भी वर्णन प्राप्त होता है। अर्थववेद के पंचम कांड के बीसवें और इक्कीस वें सूक्त **5.20.4/5/6** मे दुंदुभि और आवाज के गुणों का वर्णन प्राप्त होता है।

सं॒जय॒न्पृंतना ऊ॒र्ध्वमांयु॒गुंह्यांगृहणा॒नो बंहुधा वि चेंक्ष्व।

देवीं॒ वाचं॑ दुन्दुभ॒ आ गुंरस्व वे॒धाः शत्रूंणा॒मुपं भरस्व॒वेदः॥(3)

अर्थात्-हे! दुंदुभि युद्ध मे विजय प्राप्त कर के घोष कर और घोर गर्जन करते हुये युद्ध मे जो प्राप्त हुआ उसको ग्रहण कर अपनी चरो दिशाओ मे घोष करते हुये दैवीय वाक्यो का जय घोष कर और हमारे शत्रुओ के समूह को यहाँ हमारे समक्ष ला ।

---

(1) सिंह, ठाकुर जयदेव/भारतीय संगीत का इतिहास/पृष्ठ-32
(2) सिंह, ठाकुर जयदेव/भारतीय संगीत का इतिहास/पृष्ठ-34
(3) सिंह, ठाकुर जयदेव/भारतीय संगीत का इतिहास/पृष्ठ-31

दुन्दुभेर्वाचं प्रयंतां वदंन्तीमाशृण्वती नांथिता घोषंबुद्धा।

नारीं पुत्रं धांवतु हस्तगृह्यांमित्री भीता संमरे वधानांम्॥[(1)]

अर्थात्-दुंदुभि घोष ध्वनि के श्रवण मात्र से शत्रुओ की स्त्रियाँ अपने पुत्र को लेकर हथियार के बीच भयंकर संघर्ष करती हुयी भागती है।

पूर्वो दुन्दुभे प्रवंदासि वाचं भूम्यां: पृष्ठे वंद रोचंमानः।

अमित्रसेनामंभिजञ्जं भानो द्युमद्वंद दुन्दुभे सूनृतावत्॥[(2)]

अर्थात्- हे दुंदुभि तुम अपने वाक्य बोलो भूमि के पृष्ठ पर रोचकता से बोलो संदेश को मधुरता से स्पष्ट रूप से घोषित करो ।

दुंदुभि -वेदकाल के अनुसार दुंदुभि की बनावट की चर्चा करे तो तो उसमे ज्यादा परिवर्तन नहीं आया है। दुंदुभि हमेशा से मिट्टी कांसा व तांबे की बनी हुयी होती थी। जिसका मुख चमड़े से मढ़ा हुआ होता था, जिसको बजाने के लिए हिरण की सींग या लकड़ी की डंडी की आवश्यकता होती थी। वेदों के उल्लेख से यह पता चलता है, कि इसका वादन प्रयोग युद्ध, संग्राम, उत्सव, मंगल कार्य की सूचना के लिए किया जाता था। अथवा जयघोष के लिए इसका वादन किया जाता था। जिसको आगे चल कर मंदिरो व राजमहल के समक्ष भी बजाया जाने लगा जिसे आम भाषा मे नंगाड़ा या नगारा भी कहा जाता है। सामसूत्र के वर्णन के अनुसार दुंदुभि का एक प्रकार भूमि दुंदुभि है, जिसको ज़मीन मे गड्ढा खोद कर उस पर चमड़ा मढ़ दिया जाता था। और उसको चारों ओर से खुटियों से कस दिया जाता था, जिसे भूमि दुंदुभि के नाम से जाना जाता था। तथा इसका वादन कम उम्र के बैल की पुंछ की हड्डी से किया जाता था।[(3)]

अवनद्ध वाद्यों का वर्णन अति प्राचीन काल से प्राप्त होता रहा है। भारतीय संस्कृति के महाकाव्यों मे भी अवनद्ध वाद्यों का वर्णन देखने को मिलता है । रामायण, महाभारत इत्यादि महाकाव्यों व ग्रन्थों मे अवनद्ध वाद्यों का प्रयोग सामगान, गंधर्व गान, स्वागतगीत, विदाई के उपलक्ष मे संगीत का प्रयोग प्रचुर मात्र मे होता था। इस युग मे मृदंग, पणव, भेरी,शंख आदि वाद्यों का वर्णन प्राप्त होता है। रामायण काल मे वाद्यों के चारों प्रकार तत, अवनद्ध, घन, सुषिर का उल्लेख उपलब्ध है।

ततो भेरी मृदंगनां पणवानां च नि: स्वन: ।

शंख ने मिस्वनोन्निमश्र: सम्बभूव घनोपम: ॥[(4)]

---

(1) सिंह, ठाकुर जयदेव/भारतीय संगीत का इतिहास/पृष्ठ-31
(2) सिंह, ठाकुर जयदेव/भारतीय संगीत का इतिहास/पृष्ठ-31
(3) सिंह, ठाकुर जयदेव/भारतीय संगीत का इतिहास/पृष्ठ-32
(4) वाल्मीकि रामायण /युद्ध कांड /44वां सर्ग/श्लोक-12

3:1:4 महाभारत काल मे अवनद्ध वाद्यों का उल्लेख

महाकाव्य महाभारत के विभिन्न पर्व मे अवनद्ध वाद्यो का वर्णन प्राप्त होता है।[1]

1.	देव दुन्दुभयो, मेदु: ननृतुश्चाप्सरागणा:	आदिपर्व
2.	भेरिशंखमृदंगास्ते, झर्झरानकागोमुखान्	सौत्तिक पर्व 8/32
3.	भेरी पणवशंखानां मृदंगनां च नि: स्वनै:	अरण्य पर्व 162/19
4.	भेरीमृदंगपणवै: शंखवैणव नि: स्वनै:	उद्योग पर्व 78/16
5.	ततो भेरीश्च शंखाश्च शतशश्चैव पुष्करान्	उद्योग पर्व 142/27
6.	भेरीमृदंगपटहान् नादयंतुश्च वारिजान	भीष्म पर्व 15/17
7.	सप्ततंतून् वितन्वाना यमुपासंति याजका:	द्रोण पर्व -70/18
8.	मुरबानां महाशब्दं	कर्ण पर्व 41/14
9.	वीणानां वल्लकीनां सी नुपुरानां च शंजिरै:	अनुशासन पर्व 65/51

भेरी पणव शंखानां मृदंगनां च नि: स्वन: ।[2]

संगीत ग्रंथ की दृष्टि से अवनद्ध वाद्यों का वर्णन सर्वप्रथम भरतमुनि कृत नाट्यशास्त्र से प्राप्त होता है। भरतमुनि द्वारा अवनद्ध वाद्यों के वर्णन के साथ वाद्यों के लक्षण का उल्लेख किया है तथा अवनद्ध वाद्यों की संख्या सौ बताई है। तथा इन्हे दो श्रेणी मे विभक्त किया है। पहला अंग वाद्य वह वाद्य जो स्वर मे मिलाये जा सकते है, जैसे मृदंग,पणव, दर्दुर। दूसरा प्रत्यंग वाद्य वह जिन्हे स्वर मे नहीं मिलाया जा सकता है, जैसे- झल्लरी, पटह आदि ।[3]

नाट्यशास्त्र मे अवनद्ध वाद्यों के निर्माण हेतु एक उल्लेखनीय है, कि वर्षा काल मे स्वाति मुनि जब जल लेने पुष्कर के तट पर गए तो आसमान मे बादल छाय थे, और वर्षा हो रही थी तथा हवा के साथ पानी की बूंद कमल के पत्ती पर गिरने से एक विशेष ध्वनि उत्पन्न हो रही थी इस ध्वनि के रंजकता को जब विशेष ध्वनि मुनि ने ध्यान से सुना तो यह अति कर्ण प्रिय थी । और नाद ऊंचा नीचा तथा मध्य प्रतीत हो रहा था। इससे प्रभावित हो कर स्वाति मुनि ने विश्वकर्मा की सहायता से उसी तरहा की ध्वनि को ध्यान मे रखते हुये मृदंग, पणव और दर्दुर जैसे पुष्कर वाद्यों की रचना की तथा इन वाद्यों के निर्माण कर इनके मुख को चर्म से मढ़ा व बद्धियों से कसा। नाट्यशास्त्र मे अवनद्ध वाद्यों को आनद्ध व वितत भी कहा गया है तथा इन वाद्यों मे पुष्कर वाद्यों मे मृदंग पणव व दर्दुर तथा झल्लरी पटह का भी वर्णन है । भरत ने मुख्य तीन वाद्यों को **"पुष्कर त्रय"** माना है ।

---

(1) सेन, अरुण कुमार/भारतीय तालों का शास्त्रीय विवेचन/पृष्ठ-138

(2) महाभारत/आरण्य पर्व/श्लोक-132/19

(3) शास्त्री, बाबूलाल शुक्ल(अनुवाद)/भरत-नाट्यशास्त्र/अध्याय 33/ श्लोक 16/ पृष्ठ-350

यावनति चर्मनद्धनि ह्नोतोंद्यानि द्विजोत्तमा:

तानि त्रिपुशकाराद्यानि ह्नावनद्धमिति स्मृतम् ॥[1]

3:1:5 नाट्यशास्त्र के अवनद्ध वाद्यों का उल्लेख

3:1:5:1 पणव- भरत मुनि ने मृदंग दर्दुर व पणव वाद्य को स्वाति मुनि के द्वारा विश्वकर्मा की सहायता से बना हुआ बताया है ।

ध्यात्वा सष्टं मृदङ्गाश्च पुष्करानसृजत्त:।

पणव दर्दुर श्चैव सहितो विश्वकर्मणा ॥[2]

पणव अवनद्ध वाद्यों मे मृदंग के समान प्राचीन वाद्य माना जाता है। भरतमुनि द्वारा पणव की बनावट के विषय मे उल्लेख करते हुये बताया गया है, कि सोलाह अंगुल लंबा बीच (मध्य) भाग अंदर की ओर धसा या दबा हुआ हो जिसका पूर्ण विस्तार आठ अंगुल और दोनों मुँह पाँच-पाँच अंगुल के हो आधे अंगुल के बराबर की मोटाई का काठ हो और चार अंगुल के व्यास के साथ अंदर का भाग खोखला व पोला हो, वह ही वाद्य पणव है। पणव वाद्य के दोनों मुँह चमड़े से मढ़े व सुतली से कसे जाते थे। ध्वनि को आवश्यकता अनुसार ऊंचा नीचा किया जा सके इसलिए सुतलियों का कसाव कम जादा व ढ़ीला रखा जाता था जिससे वादन करते समय बाएं हाथ से बीच का भाग दबा कर ढ़ीला किया जा सके।[3] पणव वाद्य को दाहिने हाथ की कनिष्ठा व अनामिका से विभिन्न तरह से वादन किया जाता था व दायें हाथ से सुतलियों को ढ़ीला व कसाव किया जाता था ऐसा प्रतीत होता है, कि पणव वाद्य वादन मे सुतलियों के ढीलाव व कसाव पर विशेष बल दिया जाता था और वादन के लिए सभी उँगलियों कि अपेक्षा कनिष्ठा व अनामिका का विशेष प्रयोग किया जाता था जब पणव वाद्य को बाएँ हाथ से सुतलियों द्वारा कसा जाता था तो पूर्ण कसे वाद्य से**" ख,ख,न,न"**[4]इत्यादि बोल का निकास होता था तथा सुतलियों के ढ़ीला होने पर **"ल धा"** इत्यादि बोल का निकास होता था । आचार्य भरत मुनि के अनुसार पणव वाद्य पर निम्नलिखित बोल अक्षर का निकास होता था जैसे-**"क,ख,ग,ट,ण,ह्न,र,ला,कु,लि,लं,घ्र,णे,कि,रि,कि ह् ण**[5]

3:1:5:2 दर्दुर- महर्षि भरत द्वारा दर्दुर वाद्य को अवनद्ध वाद्य की अंग श्रेणी मे रखा है।

---

(1) शास्त्री, बाबूलाल शुक्ल(अनुवाद)/भरत-नाट्यशास्त्र/33 अध्याय/श्लोक 22/पृष्ठ-352
(2) शास्त्री, बाबूलाल शुक्ल(अनुवाद)/भरत-नाट्यशास्त्र/33 अध्याय/श्लोक 10/पृष्ठ-347
(3) शास्त्री, बाबूलाल शुक्ल(अनुवाद)/भरत-नाट्यशास्त्र/33 अध्याय/श्लोक 251-260
(4) शास्त्री, बाबूलाल शुक्ल(अनुवाद)/भरत-नाट्यशास्त्र/33 अध्याय/श्लोक 251-260
(5) शास्त्री, बाबूलाल शुक्ल(अनुवाद)/भरत-नाट्यशास्त्र/33 अध्याय/श्लोक 69

रेक्लृतिकुत्खनोत्वनोधन्मोगोणेहघिण्ण संयुक्त: ।

इति <u>दर्दुर</u> प्रहारा: कार्या मुक्ता निषण्णाश्च ॥[1]

भरतमुनि के अनुसार दर्दुर वाद्य का आकार घट के समान होता था इसका मुँह नौ अंगुली का व चमड़े की पूड़ी से 12 अंगुल की बढ़त के साथ मढ़ा हुआ होता था। दर्दुर को भी पणव वाद्य की भांति सुतलियों से कसा जाता था। दर्दुर मे बोलो के निकास के लिए दोनों हाथो का प्रयोग किया जाता था दाहिने हाथ का प्रयोग खुले बोल व बंद ध्वनियों के लिए किया जाता था तथा बाएँ हाथ का प्रयोग वादन मे सहायक के रूप मे किया जाता था।

3:1:5:3 मृदंग- महर्षि भरत ने मृदंग को अंग वाद्यों की श्रेणी मे रखा मृदंग का वर्णन वैदिक काल से ही प्राप्त तथा ऐतिहासिक दृस्टीसे देखा जाये तो मृदंग वाद्य का उल्लेख महाकाव्य रामायण मे सर्वाधिक प्रचलित वाद्य के रूप मे प्राप्त होता है सुंदर कांड मे मृदङ्ग को मुरज नाम से भी उल्लेखित किया गया है।

नृतन चापारा: कलान्ता: पान विप्राहतास्तथा ।

मुरजेषु मृदाङ्गेषु पीठिकासु च संस्थिता:॥[2]

इसी प्रकार से महाकाव्य महाभारत मे भी मृदाङ्ग को भिन्न भिन्न नाम से उल्लेखित किया गया था। नाट्यशास्त्र मे भरत मुनि ने भी मृदाङ्ग को मुरज नाम से संबोधित किया है तथा मृदाङ्गको और भी अन्नी नाम दिये है- मृदाङ्ग का निर्माण मुलायम मिट्टी से हुआ इसलिए मुरज नाम कहा मंगल व सुख ध्वनि होने के कारण मृदाङ्ग कहा, भ्रमण करने के कारण भाण्ड कहा तथा आघात प्रहार व पीट कर वादन किया जाता है तो आतोघ भी कहा गया है ।[3] **"आतोघ तोदनात्"** मुरज को मृदङ्ग का पर्याय कहना उचित होगा क्योकि महर्षि भरत ने मृदाङ्ग के लिए मुरज शब्द का प्रयोग किया है-

यद्यत् कुर्यान् मुरजे प्रहार जातं गति प्रचारेषु।

अनुगत मक्षर ऋतं तदैव वाक्यं तुपणवेऽपि ॥[4]

भरत मुनि के अनुसार मृदाङ्ग त्रयपुष्कर वाद्य है तथा भरत मुनि के द्वारा मृदाङ्ग के तीन प्रकार बताए है हरीतिकी,यवाकृति, गोपुच्छा तथा इसके बाद स्पष्ट करते हुये आंकिक को हरीतिकी की भांति ऊर्ध्वक को यवाकृति की भांति तथा आलिंगय को गोपुच्छा की भांति बताया है अंकिक ऊर्ध्वक आलिंग्य ये भिन्न नहीं बल्कि यह मृदाङ्ग के रूप ही कहलाए जाते है तथा भरतमुनि ने वाद्यों को अंग व प्रत्यंग वाद्यों मे विभाजित

---

(1) शास्त्री, बाबूलाल शुक्ल(अनुवाद)/भरत-नाट्यशास्त्र/33 अध्याय/श्लोक-15
(2) बाल्मीकी रामायण/सुंदर काण्ड/सर्ग-11/श्लोक 5-6
(3) गुप्त, अभिनव/अभिनव भारती/पृष्ठ-460
(4) शास्त्री, बाबूलाल शुक्ल(अनुवाद)/भरत-नाट्यशास्त्र/अध्याय-33/श्लोक-18

किया है। ऊर्ध्वक व आलिंग्य का वादन एक मुख या एक तरफ से होता था तथा आंकिक का वादन दो तरफ से किया जाता था। तथा इसे वाम दक्षिण मुखी कहा गया है।

आलिंग्य श्वैव गोपुच्छा: आकृत्या संप्रकीर्तित: ।[1]

आंकिक की ओर संकेत करते हुये भरतमुनि ने कहा है की यह लेता हुआ अर्थात् इसका वादन अंक व गोद मे रख कर दोनों हाथो से दोनों मुख को बजाया जाता है। ऊर्ध्वक व आलिंग्य के लिए कहा है की यह वाद्य का वादन खड़ा कर के किया जाता है। भरत मुनि ने मृदंग के तीन रूपो का वर्णन करते हुये आंकिक को ऊर्ध्वक व आलिंग्य की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण बताया है। और नाट्यशास्त्र मे ऐसे बोलों का भी वर्णन प्राप्त होता है जिंका वादन आंकिक के वाम व दक्षिण मुख पर दोनों हाथो से किया जाता था।

आंकीक का वर्णन करते हुये भरतमुनि ने मृदङ्ग के इस रूप की प्रमुखता की ओर संकेत किया और इसकी बनावट की चर्चा की है आंकिक को हरीतिकी की भांति बताते हुये कहा है कि "जिसकी लंबाई साढ़े तीन बालिस्त तथा मुख बारह अंगुल के व्यास का होता है वह ही आंकिक वाद्य है।[2] ऊर्ध्वक व आलिंग्य का वर्णन करते हुए भरत मुनि ने कहा है कि" ऊर्ध्वक चार बालिस्त लंबा तथा व्यास चौदह अंगुल के मुख का होता है।"[3] आलिंग्य का वर्णन करते हुये कहा है, कि यह तीन बालिस्त लंबाई तथा आठ अंगुल मुख व्यास का होता है।[4]

3:1:5:4 पटह-भरतमुनि ने पटह वाद्य को प्रत्यंग वाद्यों के अंतरगर्त माना है। पटह का वर्णन प्राचीन काल से ही महाकाव्यों मे प्राप्त होता रहा है। बाल्मीकी रामायण मे पटह का उल्लेख भिन्न भिन्न श्लोको मे प्राप्त होता है। सुंदर काण्ड के 10वें सर्ग में प्राप्त श्लोक-

पटहं चारुसर्वाङी न्यसय शते शुभस्तनी ।

चिरस्य रमवं लब्धवा परिष्वज्येव कमिनि ॥[5]

इसके साथ अन्य भारतीय धार्मिक ग्रन्थों मे पटह का उल्लेख प्राप्त होता है। मृछकटिका मे पटह वाद्य की ध्वनि की तुलना मेघ के गर्जन से की गयी है। तथा गीता मे भी पटह वाद्य का उल्लेख प्राप्त होता है। पटह के स्वरूप का वर्णन भरतमुनि कृत नाट्यशास्त्र मे प्राप्त होता है, जो इस प्रकार से है- पटह की लंबाई डेढ़ से ढाई हाथ की होती है। इसके बीच का भाग उभरा हुआ होता है, यह वाद्य भीतर से खोखला व इसके दोनों भाग गोलाकार होते है। इसके दाहिने मुख का व्यास साढ़े ग्यारह अंगुल तथा बायाँ (वाम) मुख पर धातु

---

(1) शास्त्री, बाबूलाल शुक्ल(अनुवाद)/भरत-नाट्यशास्त्र/श्लोक 255
(2) शास्त्री, बाबूलाल शुक्ल(अनुवाद)/भरत-नाट्यशास्त्र/अध्याय-33/श्लोक-256
(3) शास्त्री, बाबूलाल शुक्ल(अनुवाद)/भरत-नाट्यशास्त्र/अध्याय-33/श्लोक-257
(4) शास्त्री, बाबूलाल शुक्ल(अनुवाद)/भरत-नाट्यशास्त्र/अध्याय-33/श्लोक-258
(5) बाल्मीकी रामायण/सुंदर काण्ड/10 वां सर्ग/ श्लोक-39

अर्थात् लोहे व काठ अर्थात् लकड़ी की हँसुली पहना कर चमड़े से मढ़ दिया जाता है। इस वाद्य के दायें मुख पर पतला चमड़ा व बाएँ (वाम) मुख पर मोटा चमड़ा मढ़ा जाता है इसको हँसुली मे पिरो दिया जाता है तथा स्वर मे खींच कर मिलने के लिए पीतल व सोने के छल्ले डाले जाते है। मृदंग के बाद सर्वाधिक प्रचलित वाद्य पटह ही है। पटह का प्रयोग शास्त्रीय व लोक संगीत मे किया जाता है। दोनों गायन शैली के लिए उपयुक्त वाद्य है। इस वाद्य को कुछ विद्वान नंगाड़ा व दुंदुभि भी मानते है परंतु पटह न तो नंगाड़ा है और ना ही दुंदुभि पटह का वर्णन पूर्ण रूप से भरत कृत नाट्यशास्त्र मे प्राप्त होता है। पटह मे सोलह वर्ण **"क, ख, ग, घ, ट, ठ, ड, ढ़, ण, त, थ, द, ध, न, र और ह"** होते है। पटह का वादन हाथों से पदमासन मे या एक हाथ के बराबर मुड़ी हुयी डंडी से भी किया जाता है ।

3:1:5:5 झल्लरी- भरतमुनि द्वारा झल्लरी वाद्य को प्रत्यंग वाद्यों के अंतरगर्त माना है।

मृदंगो ददुर्रश्चैव पणवेष्वड्गसंज्ञिते ॥

झल्लरीपटहादीनि प्रत्याड्गानि तथैव च ॥[1]

जिन वाद्यों को स्वर मे मिलने की कोई व्यवस्था न हो उन्हे प्रत्यंग वाद्यों की श्रेणी मे रखा जाता है। झल्लरी की बनावट के विषय मे सम्पूर्ण विवरण नही प्राप्त होता है।

स्यात्तदद्यपलो भाणः परिधौ द्वादशांगुलः।

अन्यतु झल्लरीलक्ष्म तस्य श्रीशाड्गिणोदितम्॥[2]

संगीत रत्नाकर मे भाण्ड नमक वाद्य को झल्लरी का छोटा रूप माना गया है। इसी प्रकार संगीतोपनिषदसारोद्धार मे सुधकलश द्वारा झल्लरी का वर्णन करते हुए इसे घन वाद्य की श्रेणी**"झल्लरी स्थालरूपिणी"**संगीत राज 1320 ई० मे पंडित विद्यारण द्वारा रचित ग्रंथ मे झल्लरी वाद्य को अवनद्ध वाद्य बताते हुये इसकी बनावट व वादन के विषय मे बताया है– झल्लरी के वादन के लिए इस वाद्य को बाएँ हाथ के अगुंठे से लटकाया जाता है, तथा दायें हाथ से आघात कर के ध्वनि को उत्पन्न किया जाता है। संगीत पारिजात मे झल्लरी वाद्य को चक्रवाद्य अथवा करचक्र का नाम दिया गया है, जो वर्तमान मे ख़ंजरी, दायरा, चंग इत्यादि नाम से जाना जाता है। अहोबल के अनुसार झल्लरी का व्यास अठारह अंगुल अठारह पल भारी तथा बीच का भाग दो अंगुल गहरा होता है और डोरी से युक्त होता है इसका वादन ढीले हाथ से किया जाता है। इसके चमड़े से मढ़े होने के संकेत नहीं प्राप्त होते इसलिए इसको घन वाद्य के अंतरगर्त भी माना जाता है।

---

(1) शास्त्री, बाबूलाल शुक्ल(अनुवाद)/भरत-नाट्यशास्त्र/अध्याय-33/श्लोक-16

(2) चौधरी, सुभद्रा (अनुवाद)/शारंग देव कृत संगीत रत्नाकर/(वाद्याध्याय)श्लोक-1139

3:2 संगीत मकरंद में वर्णित अवनद्ध वाद्यों का अध्ययन

अवनद्ध वाद्यों का वर्णन –अनवद्ध वाद्य की चर्चा से पूर्व यह जानने का प्रयास करते है की अवनद्ध शब्द मूल कहा से प्राप्त होता है यह शब्द नह धातु मे कत् पत्यय लगाकर बंता है जिसमे नह शब्द के अर्थ अलग-अलग प्राप्त होते है बांधना, चारो ओर से लपेटा हुआ तथा चारो ओर से कसा हुआ इसी के अनुसार नद्ध शब्द के अर्थ को देखा जाए तो उसका अर्थ होता है बंधा हुआ, कस के लपेटा हुआ, तथा चारो ओर से चर्म से मढ़ा हुआ । नद्ध शब्द मे "अव उपसर्ग के योग से यह शब्द अवनद्ध की उपट्टी होती है अव शब्द का अर्थ है फैलाव व विस्तार लिए हुए अवनद्ध शब्द का पूर्ण अर्थ होता है निर्मित, जादा या बैठाया हुआ, दख हुआ,मढ़ा हुआ बंधा हुआ निश्चित किया हुआ अव+नह+नद्ध=अवनद्ध किसे के साथ नत्थी, बंधा जड़ा या बैठाया हुआ ।

इन सभी को देख के यह ज्ञात होता है, कि जो वाद्य चर्म से ढका मढ़ा व कसा हुआ होता है। तथा स्वर मे मिलाने के लिए उतार व चढ़ाव की प्रक्रिया सम्पन्न होती है, उन्हे अवनद्ध वाद्य के नाम से जाना जाता है। इस वाद्य के अंतर्गत दुंदुभि, पटह, मृदंग, पणव इत्यादि प्राचीन वाद्यों को जाना जाता है। चर्माच्छादित वाद्यों को अवनद्ध वाद्य कहा जाता है तथा इनके अन्य पर्याय भी है। जैसे आनद्ध, वितत, आतोघ, कुतुप, पुष्कर, त्रिपुष्कर, भाण्ड इत्यादि। आनद्ध शब्द नद्ध मे आ उपसर्ग लगाकर बनता है जिसका भी अर्थ बंधा हुआ कसा हुआ मढ़ा हुआ। इस दोनों शब्द अवनद्ध और आनद्ध शब्द का अर्थ समान होने के कारण इन्हे दोनों नाम से संबोधित किया जाता है। कुछ ग्रंथकारो द्वारा वितत शब्द का प्रयोग भी किया जाता था ।भरत मुनि द्वारा समस्त नाट्यशास्त्र मे वाद्यो को आतोघ की संज्ञा प्रदान की गयी है। [(1)] अभिनव गुप्त के अनुसार **"तुद"** धातु इसका मूल है। जिसके कारण यह आतोघ कहलाए जिसका अर्थ होता है, वह वाद्य जिन्हे चारो ओर से प्रहार, आघात या पीटने से ध्वनि उत्पन्न होती है।[(2)] नान्यदेव के अनुसार मृदंग, मुरज, पणव, दर्दुर और पटह इन पाँच वाद्यों को स्पष्ट रूप से आतोघ वाद्य कहा है। जिनसे यह प्रकट होता है, कि अवनद्ध वाद्यों को आतोघ की संज्ञा भी प्राप्त है।[(3)] नाट्यशास्त्र मे अवनद्ध वाद्यों को पुष्कर व त्रिपुष्कर के नाम से संबोधित किया है। जिससे तीन वाद्य मृदंग पणव व दर्दुर है, जिन्हे पुष्करत्रय पद भी प्रदान किया गया भाण्ड की संज्ञा भी अवनद्ध वाद्यों को प्राप्त है। जिसका स्वरूप घट के समान होता है। वह वाद्य भाण्ड कहलाते है।[(4)] अवनद्ध वाद्य के अनेक पर्याय विभिन्न विचारधाराओं के साथ प्रचलित हुये परंतु समय के साथ यह

---

(1) शास्त्री, बाबूलाल शुक्ल(अनुवाद)/भरत-नाट्यशास्त्र/अध्याय-33/श्लोक-1/पृष्ठ-20
(2) गुप्त, अभिवन/अभिनव भारती/ पृष्ठ- 49
(3) नान्यदेव/भरतकोष/पृष्ठ-49
(4) नान्यदेव/भरतकोष/पृष्ठ-373

परिवर्तित होते गए और वर्तमान मे सामान्य रूप से अवनद्ध वाद्य से जाना जाता है। जिसमे मृदंग, पणव, दर्दुर, दुंदुभि, ढ़ोल, पखावज, तबला इत्यादि वाद्य।

3:2:1 संगीत मकरंद में वर्णित अवनद्ध वाद्यों की अर्थ सहित व्याख्या

मृदङ्गो दर्दुरश्चैव पणवस्त्वङ्गसंज्ञिकः ।

झर्झरी पटहादीनि शम्भो मुखरिकास्तथा ॥[1]

पदच्छेदः-मृदङ्गो, ददुर्, श्रैव, च्, पणव, स्त्व, अङ्ग, संज्ञिकः,झर्झरी, पटहा, दीनि, शम्भो, मुखरिका,स्तथा

अनव्य-मृदङ्गो- एक विशेष प्रकार की मिट्टी से निर्मित आकार वाला वाद्य, दर्दुर-प्राचीन काल का एक वाद्य जिससे गरजने की सी ध्वनि उत्त्पन होती हो, श्रैव-ब्रह्मर्षि नारद जी के द्वारा देवाधिदेव के समक्ष क्षमा प्रार्थना करते हुए, पणव-प्राचीन काल का एक वाद्य यंत्र जिसका वर्तमान रूपान्तरण जैसे छोटा नगाड़ा,छोटा ढोल अथवा ढोलकी, स्त्वङ्गसंज्ञिकः-महर्षि अथवा ब्रह्मर्षि नारद जी के द्वारा देवाधिदेव के समक्ष छंदोबद्ध अथार्त पद्य,गुणधर्म के रुप में क्रमानुसार इसके अंगों के स्वरूप कथन का गुणागान करना तथा उसकी महत्ता का वर्णन किया, इसके सभी निर्मित अवयवों को ध्यान में रखना चाहिए। झर्झरी-एक वाद्य जिसकी ध्वनि भगवान शिव पर जलार्पण की जैसी ध्वनि हो,पटहादीनि-एक वाद्य जिस पर हाथों को घुमाते हुये पटक देनें की कलाविधि, शम्भोमुखरिकास्तथा-शम्भो शब्द के उच्चारण में "भो" ही स्थित रहता है वैसा ही स्वर उत्त्पन करनें वाले वाद्य जैसे शंख भेरी पणव मुरज ढक्का बाद धनित घंटा नाद आदि है।

भावार्थ-ब्रह्मर्षि नारद जी के द्वारा देवाधिदेव के समक्ष क्षमा प्रार्थना करते हुए वाद्य यंत्रों का विवरण प्रस्तुत कर रहे हैं, जो इस प्रकार है, एक विशेष प्रकार की मिट्टी से निर्मित आकार वाला वाद्य और जिससे गरजने की सी ध्वनि उत्त्पन होती है, प्राचीन काल का ही एक वाद्य जिसमे शंख भेरी पणव मुरज ढक्का बाद धनित घंटा नाद आदि तथा एक वाद्य जिसकी ध्वनि भगवान शिव पर जलार्पण की ध्वनि जैसी हो साथ ही एक वाद्य जिस पर हाथों को घुमाते हुये पटक अथवा प्रहार देनें पर अथवा करने पर “भो” जैसा स्वर उद्घोषित होता है,नारद जी के द्वारा देवाधिदेव के समक्ष छंदोबद्ध अथार्त पद्य,गुणधर्म के रुप में क्रमानुसार इसके अंगों के स्वरूप कथन का गुणागान करना तथा उसकी महत्ता का वर्णन किया, इसके सभी निर्मित अवयवों को ध्यान में रखना चाहिए।

शृङ्गं च कहला चेति सुषिरादिप्रकीर्तिताः।

हरीतक्याकृतिस्त्वन्या एवमाद्यास्ततोर्ध्वगः ॥[2]

---

(1) नारद विरचित: संगीत मकरंद/संगीतध्याय/चतुर्थ पाद/श्लोक-9/पृष्ठ-22

(2) नारद विरचित: संगीत मकरंद/संगीतध्याय/चतुर्थ पाद/श्लोक-10/पृष्ठ-22

पदच्छेदः–शृङ्गं च केहला चेति सुषिरादि प्रकीर्तिताः हरीतक्याकृति स्त्वन्या एव माद्या स्ततोर्ध्वगः

अनव्य-शृङ्गं-वट,आँवला अथवा पाकड़ वृक्ष की लकडी, च-और, कहला-प्राचीन काल का वाद्य जो बड़े ढोल की सी आकृति जैसा, चेति-आधुनिक,सुषिरादि-संगीत में वह वाद्य यंत्र जो वायु के जोर से बजाये जाते हों जो छेदों या सूराखों से भरा हुआ होतथा जो फूँककर बजाया जाने वाला वाद्य , प्रकीर्तिताः -जिसकी ख्याति सभी ओर बिखरती थी, हरीतक्याकृति-हरड़ की आकृति वाला (फल एक से तीन इंच तक लंबे और अण्डाकार होते है, जिसके पृष्ठ भाग पर पाँच रेखाएँ होती है, कच्चे फल हरे तथा पकने पर पीले धूमिल होते है। प्रत्येक फल में एक बीज होता है। अप्रैल-मई में नए पल्लव आते हैं। फल शीतकाल में लगते है। पके फलों का संग्रह जनवरी से अप्रैल के मध्य किया जाता है।, स्त्वन्या-विद्वान अर्थात् जो सभी विधाओं के ज्ञान से युक्त हो, का मत है, एव- ही अथवा भी, माद्या-किसी चर राशि के परिमाण (Magnitude) को व्यक्त करने का एक प्रकार का सांख्यिकीय तरीका है, स्ततो-किसी पदार्थ के सार भाग का विवरण प्रस्तुत करना, र्ध्वगः-"ध" स्वरों की वर्ग की श्रेणी

भावार्थ-ब्रह्मर्षि नारद जी"ध"स्वरों की वर्ग की श्रेणी के दो वाद्य यंत्रों का विवरण विधिवतरूप से वर्णित कर रहे हैं जो क्रमानुसार है। वट,आँवला अथवा पाकड़ वृक्ष की लकडी से प्राचीन काल का वाद्य जो बड़े ढोल की सी आकृति,जिसकी हरड़ की आकृति वाला (हरड़ फल एक से तीन इंच तक लंबे और अण्डाकार होते हैं, जिसके पृष्ठ भाग पर पाँच रेखाएँ होती है। इसका सांख्यिकीय तरीका किसी चर राशि के परिमाण (Magnitude) को व्यक्त करने का एक प्रकार है, इसी क्रम मे कुछ वाद्य यंत्र जो वायु के जोर से बजाये जाते हों जो छेदों या सूराखों से भरा हुआ होता है तथा जो फूँककर बजाया जाने वाला वाद्य है।

आलिङ्गःश्चैव गोपुच्छो मध्यदक्षिणवामगः ।

ढक्का डमरुगा मन्द्रा मडुझर्झरडिण्डिमाः॥[(1)]

पदच्छेदःआलिङ्ग श्चैव गो पुच्छो मध्य दक्षिण वामगः ,ढक्का डमरुगा मन्द्रा मडु झर्झर डिण्डिमाः

अनव्यय-आलिङ्ग-हृदय से लगाने योग्य, श्रैव-शिवलिंग के आकार का सा, च-और, गोपुच्छो-गाय की पूँछ के समान, मध्यदक्षिण-मध्य व दक्षिण-दक्षिण या दाहिने का उलटा, वामगः -बायी ओर, ढक्का-एक प्रकार का वाद्य जिससे उतन्न ध्वनि बडे ढोल अथवा नगाड़े की सी होती है, डमरुगा-एक छोटा संगीत वाद्य यन्त्र होता है (पद्धति ने वाद्ययंत्रों को चार मुख्य समूहों में वर्गीकृत किया है जिसमें यह एक घन वाद्य है), मन्द्रा-संगीत में स्वरों के तीन भेदों में से एक। इस जाति के स्वर मध्य से अवरोहित होते हैं । इसे उदारा वा उतार भी कहते हैं, मडु-प्राचीन काल में दक्षिण भारत का वाद्ययंत्र, झर्झर- हुड़ुक नाम का लकड़ी का वाद्य

(1) नारद विरचित: संगीत मकरंद/संगीतध्याय/चतुर्थ पाद/श्लोक-11/पृष्ठ-22

जिसपर चमड़ा मढ़ा होता है, डिण्डिमाः प्राचीन काल का एक वाद्य जिसको वर्तमान मे डुगडुगी अथवा डुग्गी कहा जा सकता है। इसके ऊपर चमड़ा मढ़ा होता था, इसको डुगडुगिया भी कहा जा सकता है।

भावार्थ-ब्रह्मर्षि नारद जी हृदय से लगाने योग्य देवाधिदेव का स्मरण करते हुये आधुनिक वाद्य यंत्र मृदङ्ग की बनावट के आकार को विधिवत वर्णन कर रहे हैं, जो कि इस प्रकार था। गाय की पूँछ के समान, जिसका मध्य भाग बडे ढोल अथवा नगाड़े कासा होता है तथा क्रमशः बीच से दाहिना तथा दाहिने का उलटा भाग जो एक छोटा संगीत वाद्य यन्त्र हुडुक नाम का लकड़ी का वाद्य जिस पर चमड़ा मढ़ा होता है, जिसको वर्तमान मे डमरू जो महादेव जी का प्रिय है, तथा बायी ओर का उल्टा अर्थात् दाहिना, जो प्राचीन काल का एक वाद्य जिसको वर्तमान मे डुगडुगी अथवा डुग्गी कहा जा सकता है। इसके ऊपर चमड़ा मढ़ा होता था, इसको डुगडुगिया भी कहा जा सकता है।

<u>उडुत्रिविधगुञ्जा च कटका</u>करणादयः।
ध्वनिश्च विविधा ज्ञेया नारदेन कृता मताः ॥[(1)]

पदच्छेदः-उडु, त्रिविध, गुञ्जा, च, कटका, करणा, दयः, ध्वनि, श्च, विविधा, ज्ञेया, नारदेन, कृता, मताः

अनव्य-उडु-केवट के द्वारा, त्रिविध-तीन प्रकार से, गुञ्जा-अरहर के बराबर खूब लाल दाना, च-और, कटका-हाथ का ऊपरी ऊँचा उठा हुआ भाग, करणा-हाथों मे, दयः–देना, ध्वनिश्च-ध्वनि को जो, विविधा-बहुत प्रकार से अथवा अनेकानेक तरह का, ज्ञेया-ज्ञान का विषय जो एक से अनेक शब्दों के संयोग से निर्मित एक शब्द, नारदेनकृता -महर्षि नारद जी के द्वारा कहा गया, मताः–मत अथवा सहमति देना

भावार्थ-ब्रह्मर्षि नारद जी उपरोक्त क्रम में महादेव जी के समक्ष पुनः एक अन्य प्रकार के वाद्य यन्त्र का परिचय जैसे उसका स्वरूप तथा उससे उत्पन्न स्वरों की तथा बनावट का विवरण प्रस्तुत कर रहे हैं। तीन प्रकार से उत्पन्न स्वरों का गुञ्जायमान करनें वाले इस वाद्य को केवट के द्वारा बहुत प्रकार से अथवा अनेकानेक तरह के ध्वनि का विस्तार किया जाता है। अब परिचय स्वरूप जिसका ऊपरी भाग उठा हुआ और उसमें अरहर के बराबर खूब लाल दानें भरे हों, इसको हाथों में लेकर ध्वनि का विस्तार किया जाता हो महर्षि नारद जी का मत है।

संगीत मकरंद के संगीतध्याय के चतुर्थ पाद के श्लोको मे मृदंग के लक्षण व वीणा के लक्षण के बारे मे बताया गया है, तथा वाद्य विशेष के अंतर्गत प्रत्यंग वाद्यो मे मृदंग, दर्दुर, पणव और अंग वाद्यो मे झर्झरी पटह का नाम दिया गया है, परंतु लक्षण व पटाक्षर का वर्णन पूर्ववर्ती व परवर्ती ग्रंथो मे प्राप्त होता है। आंकिक, ऊर्ध्वक, आलिंग्यक, ढक्का, डमरूगा, मंद्रा, मुड्डू, झर्झर, डिंडिमा, कटक आदि अवनद्ध वाद्यों के नाम

(1) नारद विरचित: संगीत मकरंद/संगीतध्याय/चतुर्थ पाद/श्लोक-12/पृष्ठ-22

संगीत मकरंद के विभिन्न श्लोको मे भी प्राप्त होता है। आलिंग्यक, ढक्का, डमरूगा, मुड्डू, झर्झर, डिंडिमा, कटक

3:2:2 आलिङ्ग/आलिंग्यक-त्रिपुष्कर के तीन भाग अंकिक, ऊर्ध्वक,आलिंग्यक कहे जाते है जिनका सम्पूर्ण विवरण सर्वप्रथम भरत कृत नाट्यशास्त्र मे प्राप्त होता है। आलिंग्यक का उल्लेख संगीत मकरंद मे प्राप्त होता है परंतु इसकी बनावट व वादन विधि का वर्णन पूर्ववर्ती ग्रंथ भरत कृत नाट्य शास्त्र मे प्राप्त होता है।

आलिङ्ग श्चैव कत्र्तव्यस्ताल प्रथमद्यापि ।

मुख तस्यांगुलानि स्युरष्टावेव सभासत: ॥(1)

भरत कृत नाट्य शास्त्र के अनुससर यह वाद्य मिट्टी से निर्मित होता था तथा भीतर से पोला होता था इसके मुख का व्यास आठ अंगुल प्रमाण व इसकी ऊंचाई तीन विलात (बालिस्त) तथा इसके मुख पर चमड़े से मढ़ी पूड़ी लगाई जाती थी, तथा जिसको स्वर मे मिलने के लिए डोरी व बद्धि से कसा जाता था और इसको खर्ज के स्वर मे मिलाया जाता था।

3:2:3 कटक-कटक वाद्य का घेरा लोहे की पतली व सीधी परतों को परस्पर जोड़ कर बनाया जाता है वाद्य के दोनों मुख को बकरे की खाल से मढ़ा जाता है मढ़े हुये चमड़े को कसने के लिए डोरी का प्रयोग किया जाता है। कटक को स्वर मे चढ़ाने व उतारने के लिए डोरी मे लोहे व पीतल के छल्ले लगे रहते है। ढ़ोल के दो भाग होते है, एक नर भाग व एक स्त्री भाग कहलाता है। नर भाग का वादन डंडे से तथा स्त्री भाग का वादन हाथ से किया जाता है। वर्तमान मे इस वाद्य को बाहरु ढ़ोल कहा जाता है। राजस्थान मे ढोली, मीरासी, सरगर इत्यादि जाति के लोग ढ़ोल बजने का कार्य करते है, जिसका प्रयोग अलग-अलग उत्सव व अवसरों पर किया जाता है। इस वाद्य को कटक, बाहरु ढ़ोल, घोडचिड़ी, रौ, ढ़ोल हुडुक्का आदि के नाम से जाना जाता है।(2)

3:2:4 ढक्का- ढक्का वाद्य को धौंसा व ढवस की रचना के समान माना जाता है। इसके दो मुख होते है तथा दोनों मुख तेरह-तेरह अंगुल के चौड़े व्यास के होते है। इसे बायीं बगल (उल्टे हाथ की बगल मे दबा कर) दाहिने हाथ (सीधे हाथ) से दण्डी की सहायता से वादन किया जाता है तथा इसमे **हैं ढें दें हें** पटाक्षर का वादन किया जाता है ।(3)

---

(1) शास्त्री शुक्ल, बाबूलाल(अनुवाद)/भरत-नाट्यशास्त्र/तैतीसवाँ अध्याय/ श्लोक-244
(2) Ignca.nic.in
(3) भारतीय संगीत का इतिहास/डॉ० ठाकुर जयदेव सिंह/पृष्ठ-69

3:2:5 डमरूगा/डमरू- एक छोटा संगीत वाद्य यन्त्र होता है। पद्धति ने वाद्य यंत्रों को चार मुख्य समूहों में वर्गीकृत किया है जिसमें यह एक घन वाद्य है। डमरू का उल्लेख अति प्राचीन काल से प्राप्त होता है तथा इस वाद्य को भिन्न भिन्न नाम से जाना जाता है। जैसे- डोरू,डेरु, डमरुक आदि इस वाद्य का उल्लेख सभी ग्रंथो मे देखने को मिलता है। इसका प्रयोग अति प्राचीन काल से वर्तमान मे भी हो रहा है। इसकी बनावट व वादन विधि का वर्णन सभी ग्रंथो मे नहीं प्राप्त होता है परंतु संगीत के मुख्य पड़ाव संगीत रत्नाकर मे मिलता है। संगीत रत्नाकर के अनुसार इसकी लंबाई एक बालिस्त या आठ अंगुल की होती है। इस वाद्य मे दो मुख होते है, जो चमड़े से मढ़े हुए होते है, तथा बीच का भाग छोटा है। मध्य भाग को डोरी द्वारा कसा जाता है, और बीच मे दो सूत की डोरी लगाई जाती है, जिसके सिरो पर मत्ती या मोम से घुंडीयां लगाई जाती है। जिसके टंकार से ध्वनि उत्पन्न होती है, और डमरू का वादन होता है।[1] इसमे **"ड"** पटाक्षर तथा अन्य विद्वानों के अनुसार **क, र, ख, ट** वर्णों का निकास होता है।[2] वर्तमान समय मे डमरू मुख्य रूप से शिव मंदिरों मे देखने को मिलता है। जहां डमरू के विभिन्न आकार बड़े व छोटे दोनों प्रकार के देखने को मिलते है। दक्षिण भारत मे बड़े डमरू को हुरूक्का कहा जाता है। उत्तर भारत मे इसका प्रयोग मन बहलने वाले खेलो भी किया जाता है।

3:2:6 डिंडिमा- डमरू के आकार का यह वाद्य जिसका शरीर पकाई हुई मिट्टी से बनाया जाता है। परंतु यह वाद्य डमरू से आकार मे छोटा होता है, इसके दोनों मुख को चमड़े की पतली तह से मढ़ा जाता है। इसके मध्य भाग मे एक डोरी डाली जाती है, तथा डोरी के दोनों छोर पर गांठ बंधी जाती थी। इसमे डमरू की भांति बीच से पकड़ने की जगह होती है, डोरी को दोनों गांठों से ही चमड़े से घोष उत्पन्न होता है। प्राप्त माहिती के अनुसार मलयगिरिके चौदाहवें सर्ग के संस्कृत रूपान्तरण मे डिमडिमा को करटा-कदम्वानां के नाम से भी जाना जाता है।[3]

डिंडिमा परिगृह्यान्या तथैवासत्तक डिंडिमा ।

प्रसुप्ता तरुणां वत्समुपगुहयेव भामिनी ॥[4]

अर्थात् डिमडिमा वाद्य से प्रेम करने वाली कोई स्त्री जो अपने जवान बालक को लेकर सोयी हुई हो । उसी प्रकार से वाद्य को पकड़ा हुआ हो ऐसा प्रतीत होता है।

3:2:7 मड्डुक- मड्डुक वाद्य का वर्णन वाल्मीकि रामायण के सुंदर कांड के 10वें सर्ग के 38 वें श्लोक मे प्राप्त होता है जिसके अनुसार-

---

(1) भारतीय संगीत का इतिहास/लाल मणि मिश्र/ पृष्ठ-70
(2) संगीत सार/ महारणा कुंभा /पृष्ठ-78
(3) सिंह, डॉ० ठाकुर जयदेव/ भारतीय संगीत का इतिहास/पृष्ठ-263
(4) वाल्मीकि रामायण/सुंदरकांड/10वां सर्ग/श्लोक-44

अन्या कक्षमतेनैव मड्डुकेननासितेक्षणा ।

प्रसुप्ता भामिनी भाति बालपुत्रेव वत्सला ॥[1]

अर्थात् मड्डुक वाद्य को बालक के समान मानते हुये कोई काली नैनो वाली स्त्री अपने बगल मे मड्डुक को लिए हुए सोई हुयी है जिसे देख कर ऐसा प्रतीत होता है कि मानो को स्त्री अपने नन्हें बालक को ले कर सोयी हुयी हो इस वाद्य यंत्र का वर्णन इस नाम से किसी संगीत ग्रंथ मे नहीं प्राप्त होता परंतु संगीत मकरंद व संगीत दामोदर मे यह अवनद्ध वाद्यों मे मड्डुक का नाम देखने को मिलता है। इस वाद्य को मड्डुक व मड्डु दोनों नाम से जाना जाता है। ऐसा माना जाता है, कि मड्डुक वाद्य छोटे आकार का हुडुक्क वाद्य का रूप है। हुडुक्क वाद्य कि लंबाई एक हाथ या चार बालिश्त अट्ठारा अंगुल कि गोलाई तथा सात अंगुल मुख का व्यास होता है, जिसमे एक रस्सी होती है, और दस अंगुल का मुख का मण्डल होता है जिसको चमड़े कि पट्टियों से मढ़ा जाता है और इसमे छ: छेद होते है जिसके साथ रस्सी बांध दी जाती है जिससे अर्गलाए होती जो आगे के भाग मे तीन व पिछले भाग मे दो होती है। इसको बाएँ हाथ से पकड़ कर दाहिने हाथ से बजाया है। यह वर्णन एक हुडुक्क वाद्य का है परंतु मड्डुक वाद्य एक छोटे प्रकार का हुडुक्क कहा जा सकता है। तथा हुडुक्क को आवज का पर्याय माना जाता है।[2]

3:2:8 झर्झर- इस वाद्य का उल्लेख पौराणिक महाकाव्य महाभारत मे प्राप्त होता है।

मड्डुकझर्झरादणन्यतरस्याम्। [3]

पाणिनी अष्टाध्यायी के विशेष सूत्र मे अति प्राचीन वाद्य का उल्लेख प्राप्त होता है। झर्झर व मड्डुक वाद्य जिसकी ध्वनि भगवान शिव पर जलार्पण की जैसी ध्वनि हो, रामायण काल मे आघात व ताड़ना स बजने वाले वाद्य को झर्झर के नाम से भी जाना जाता था, जिसका साक्ष्य पद्मपुराण मे प्राप्त होता है।[4] वर्तमान मे इस वाद्य का स्वरूप मे झांझ को माना जा सकता है।

3:3 संगीत मकरंद के परवर्ती ग्रंथो में वर्णित अवनद्ध वाद्यों का अध्ययन

भारतीय संगीत मे उपलब्ध ग्रन्थों मे संगीत मकरंद ग्रंथ को ई० सन् 7वीं से 10वीं शताब्दी के मध्य का माना जाता है। इस ग्रंथ में वाद्यों के वर्णन को देखते हुए संगीत मकरंद के परवर्ती ग्रन्थों मे 10वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से 18वीं शताब्दी के मध्य मे रचित ग्रन्थों मे वर्णित अवनद्ध वाद्यों का उल्लेख किया जाना उचित प्रतीत होता है। वाद्यों के विषय पर और विचार करने से यह जान पड़ता है, कि वाद्यो का प्रचार अति प्राचीन

---

(1) वाल्मीकि रामायण/सुंदरकाण्ड/10वां सर्ग/श्लोक-38
(2) शर्मा, महेंद्र प्रसाद/अवनद्ध वाद्य: सिद्धान्त एवं वादन परंपरा/पृष्ठ-22
(3)अष्टाध्यायी/ पाणिनी/ सूत्र-4.4.56
(4) पद्मपुराण/अट्ठावनवां पर्व/श्लोक-28

काल से निरंतर चला आ रहा है। जिसके साक्ष्य भारतीय संस्कृति के ग्रन्थों मे प्राप्त होते है। ई० सन् 250 से 950 तक का समय सौराष्ट्र और मारवाड़ मे जैन धर्म का प्रचार ज़ोर पर था जैन गुरु व जैन ग्रन्थों का प्रचार प्रसार हो रहा था। स्थानांगसूत्र नमक ग्रंथ में वितत शब्द का प्रयोग चर्मवाद्य (अवनद्ध) के लिए किया गया है, तथा इसके साथ साथ अन्य वाद्यों का भी वर्णन प्राप्त होता है।[1]

ततं वीणादिकं वाद्यं विततं पटणादिकम् ।

घनं तू कांस्यतालादि वंशदि सुषिरम्मत् ॥[2]

अर्थात् तत् वाद्य मे वीणा वितत मे पटणा अर्थात् (पटह) घन वाद्य मे कांस्य का ताल वाद्य तथा सुषिर वाद्य मे वंशी का उल्लेख प्राप्त होता है। जैन ग्रन्थों मे ई० सन् 1089 से 1173 का समय कलिकाल सर्वज्ञ हेमचन्द्राचार्य का माना जाता था, तथा इस युग को जैन युग का स्वर्ण काल माना जाता था।[3] हेमचन्द्राचार्य द्वारा अपने ग्रंथ अभिधान चिंतामणि संगीत शास्त्र के कां० 4 श्लोक 201 मे तत,आनद्ध घन और सुषिर वाद्य व शब्द का प्रयोग किया गया है। इसके पश्चात विभिन्न संगीत ग्रंथो मे वर्णित वाद्यों का वर्णन प्रस्तुत किया गया है। मध्य काल के संगीत ग्रंथो मे जिनमे वाद्यों का वर्णन प्राप्त होता है। जो इस प्रकार से है।

3:3:1 सोमेश्वर देव कृत मानसोल्लास- सोमेश्वर देव कृत मानसोल्लास 12 वीं शताब्दी का ग्रंथ माना जाता है यह पूर्णरुपेण संगीत ग्रंथ नहीं है परंतु इस ग्रंथ मे वर्तमान प्रचलित संगीत के विशेष तत्वो का विवरण दिया गया है। इस ग्रंथ को "अभिलाषितार्थ चिंतामणि" भी कहा जाता है। मानसोल्लास ग्रंथ मे अध्यायों को विशांति के नाम से संबोधित व विभक्त किया गया है प्रत्येक अध्याय मे 20-20 उपअध्याय है। संगीत से संबन्धित अध्याय विनोद विशांति है जिसके अंतर्गत गीत विनोद मे 567 श्लोक, वाद्य विनोद मे 380 श्लोक तथ नृत्य विनोद मे 458 श्लोक दिये गए है। वाद्य विनोद उप अध्याय मे सोमेश्वर द्वारा वाद्यों का विश्लेषण के साथ ताल का भी वर्णन प्राप्त होता है। वाद्यों को चार प्रकार तत, वितत, घन, सुषिर मे विभाजित किया गया है।

ततं च विततं चैव घनं सुषिर मेव च॥[4]

नाद के आधार पर वाद्यों को तत वितत सुषिर और अवनद्ध चार प्रकार बताए गए है। अवनद्ध वाद्यो मे 20 वाद्यों कि गणना कि गयी है। पटल, पटोथ, वादित्र, हुडुक्का, ढक्का, घडस, करटा,त्रिवली, मरदल, डमरू,

---

(1) संगीत मैग्ज़ीन/भारतीय वाद्य अंक/जनवरी 2004/पृष्ठ-2
(2) संगीत मैग्ज़ीन/भारतीय वाद्य अंक/जनवरी 2004/पृष्ठ-2
(3) संगीत मैग्ज़ीन/भारतीय वाद्य अंक/जनवरी 2004/पृष्ठ-2
(4) मानसोल्लास/सोमेश्वर देव कृत /श्लोक-57

रुज्जा, कहुडा, सेल्लुका, घट ,ड्क्कुली, नि:साण, दुंदुभि तथा भेरी इत्यादि वाद्यो के लक्षण व पटाक्षरों कि जानकारी दी गयी है।(1)

3:3:2 नान्यदेव कृत सरस्वती हृदयलंकार (भरत भाष्यम)- नान्यदेव का काल सन 1097 से 1133 तक था जो संगीत का स्वर्ण युग कहलाता है। 9वीं शताब्दी से 10वीं शताब्दी के मध्य नान्यदेव द्वारा रचित ग्रंथ भरत भाष्यम है। जिसमे 7000 श्लोक है। इस ग्रंथ मे 17 अध्याय है परंतु उपलब्ध ग्रंथो के अनुसार पाण्डुलिपि के अंतिम अध्याय 16-17 के कुछ पृष्ठ नष्ट हो चुके है।(2) ताल व वाद्यों की बात करे तो तालध्याय मे तालों का वर्णन तथा पुष्कराध्याय मे ताल वाद्य व उनकी वादन विधि का वर्णन प्राप्त होता है।(3)

3:3:3 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर -शारंगदेव कश्मीरी ब्राह्मण थे इनका समय काल 1210-1250 अर्थात् 13वीं शताब्दी का पूर्वार्ध था। संगीत रत्नाकर का प्रथम अध्याय स्वरगताध्याय द्वितीय अध्याय रागविवेकाध्याय, तृतीय अध्याय प्रकीर्णाध्याय, चतुर्थ अध्याय प्रबंधाध्याय, पंचम अध्याय तालध्याय, छठा अध्याय वाद्याध्याय, तथा सातवां अध्याय नृत्याध्याय है। संगीत रत्नाकर को सप्तध्यायी भी कहा जाता है। शारंग देव कृत संगीत रत्नाकर मे अवनद्ध वाद्यों का अध्ययन पूर्ण रूप से देखने को मिलता है, मध्यकाल का यह ग्रंथ संगीत का आधार ग्रंथ माना जाता है। छठे अध्याय वाद्यध्याय के प्रारम्भ से ही वाद्यों के विषय मे माहिती प्राप्त होने लगती है।

गीतं चतुर्विधाद् वाद्याज्जायते चोपरज्यते ।
मीयते च ततोऽस्माभिर्वाद्यमत्र निगद्यते ॥
तत् ततं सुषिरं चावनद्धं घनमिति स्मृतम्।
चतुर्धा तत्र पूर्वाभ्यां श्रुत्यादिद्वारतो भवेत् ॥
गीतं ततोऽवनद्धेन रज्यते मीयते घनात् ।(4)

संगीत रत्नाकर मे चार प्रकार के वाद्यों के द्वारा गीत उत्पन्न का प्रारूप बताया गया है जिसमे तत सुषिर अवनद्ध और घन वाद्य है। रत्नाकर के अनुसार तत से श्रुति सुषिर से गीत और इसके पश्चात अवनद्ध वाद्य से गीत का रंजित होता तथा घन वाद्यों से ताल का मापन किया जाता है।(5) वाद्यों के वर्णन के पश्चात पंडित शारंगदेव द्वारा अवनद्ध वाद्यों का विषद वर्णन किया है।

---

(1) काव्या, कीर्ति सिंह/भारतीय संगीत ग्रंथ/पृष्ठ-86
(2) मराठे, डॉ० मनोहर भाल/ताल वाद्य शास्त्र/पृष्ठ-116
(3) मराठे, डॉ० मनोहर भाल/ताल वाद्य शास्त्र/पृष्ठ-116
(4) शारंगदेव कृत/ संगीत रत्नाकर/अनुवादक सुभद्रा चौधरी/श्लोक-3-4/पृष्ठ-248-249
(5) जौहरी, डॉ० रेणु/ग्रंथ सारामृत/पृष्ठ-101

पटहो मर्दलश्चाथ हुडुक्का करटा घटः ॥

घडसो ढवसो ढक्का कुडुक्का कुडुवा तथा।

रूंजा डमरूको डक्का मण्डिडक्का च डक्कुली॥

सेल्लुका झल्लरी भाणस्त्रिवली दुन्दुभिस्तथा।

भेरीनिःसाणतुम्बक्यो भेदाः स्युरवनद्धगाः ॥

पटह, मर्दल, हुडुक्का, करटा, घट, घडस, ढवस, ढक्का, कुडुक्का, कुडुवा, रूंजा, डमरू, डक्का, मण्डिडक्का, डक्कुली, सेल्लुका, झल्लरी, भाण, त्रिवली, दुंदुभि, भेरी, नि:साण, तुंबकी इत्यादि। वाद्यों के लक्षण का वर्णन संगीत रत्नाकर मे श्लोको के साथ दिया गया है, संगीत रत्नाकर मे प्राप्त वाद्यों पूर्ण वर्णन यहाँ प्रस्तुत किया जाना संभव नहीं है, क्योकि वाद्यो का विस्तार अत्यधिक है यहा कुछ अंश प्रस्तुत कर के अपने कार्य की सार्थकता स्पष्ट करने का प्रयास है।

3:3:3:1 पटह- पटह वाद्य के दो भेद देशी व मार्गी प्राप्त होते है संगीत रत्नाकर के अनुसार मार्गी पटह के लक्षण इस प्रकार से है कि मार्गी पटह के निर्माण के लिए खैर कि लकड़ी उचित मानी जाती है। इसकी लंबाई ढ़ाई हाथ कि मानी जाती है तथा इसकी परिधि का व्यास 60 अंगुल और मधी भाग को अधिक मोटा रखा रखा जाता है। दक्षिण मुख का व्यास साढ़े ग्यारह अंगुल और बाएँ मुख का व्यास साढ़े दस अंगुल रखा जाता है।[1] दायें मुख पर लोहे का कड़ा (गोलाकार वलय) तथा बाएँ मुख पर लकड़ी का गोलाकार कड़ा या वलय लगाया जाता है।

पटह के दायें व बाएँ मुख को गाय के बछड़े के चर्म(छ: महीने की उम्र के मृत) से अच्छादित या मढ़ा जाता है। पटह की बायीं वलय मे सात छिद्रों मे पतली व मजबूत डोरी पिरोयी जताई है, जिसमे सोने व चाँदी के चार अंगुल लंबे छल्ले को बांधा जाता है। बायीं तरफ गोलाकार वलय से चार अंगुल की दूरी पर तीन अंगुल लंबी लोहे की पटिया मजबूती से लगा दी जाती है तथा दोनों मुख को चमड़े की बद्धियों से बांध का कस दिया जाता है। पटह वाद्य को स्वर मे मिलने के लिए छिद्रों मे डाले गए छल्लो को खींच कर स्वर मे मिलाया जाता है। शारंगदेव जी द्वारा इस वाद्य के देवता स्कन्ध को बताया गया है। [2] देशी पटह मार्गी पटह से आकार मे छोटा होता है। देशी पटह की लंबाई डेढ़ हाथ की होती है, दायाँ मुख सात अंगुल के व्यास का और बायाँ मुख साढ़े छ: अंगुल के व्यास का होता है इसमे इच्छानुसार लोग आंतरिक जाटर की चमड़ी का

(1) जौहरी, डॉ० रेणु/ग्रंथ सारामृत/पृष्ठ-106

(2) शारंगदेव कृत/ संगीत रत्नाकर/अनुवादक सुभद्रा चौधरी/श्लोक-817-821/पृष्ठ-442-443

प्रयोग किया जाता है इसका वादन 18 अंगुल लंबे कोण से किया जाता है जो आगे के भाग से झुका हुआ होता है।[1]

3:3:3:2 मर्दल (मृदंग)-

निर्दोषबीजवृक्षोत्थ: पिंडेऽर्धाङ्गुलसंमित:।

एक विंशत्यङ्गुल: स्याद् दैध्ये वामे मुखे पुन: ॥[2]

मृदंग की बनावट के लिए विजयसार की लकड़ी का प्रयोग किया जाता है जिसकी मोटाई आधे अंगुल की रखी जाता है तथा लंबाई इक्कीस अंगुल, बायाँ मुख चौदह अंगुल तथा दायाँ मुख पंद्राह अंगुल का होता है। इसके दोनों मुख को चमड़े से मढ़ा जाता है, चमड़े को किनारे से मोटा रखा जाता है और इसमे एक एक अंगुल की दूरी के हिसाब से छिद्र बनाए जाते है छिद्र मे बद्धियाँ पिरो कर कस दिया जाता है जिससे स्वर को उतारा व चढ़ाया जाता है। दोनों मुख पर पके हुए चावल व राख़ के मिश्रण को माढ़ कर बाएँ मुख पर बड़े आकार मे व दायें मुख पर छोटे आकार मे विलेपन किया जाता था।[3] रामशंकर दास की पुस्तक मे लिखा है कि मर्दल के निर्माण मे जिस काठ के टुकड़े का प्रयोग किया जाना चाहिए वो या तो रक्त चन्दन का हो या फिर खैर की लकड़ी का होना चाहिए।[4] शारंगदेव द्वारा मुरज व मर्दल को मृदंग का पर्याय माना गया है। [5]

3:3:3:3 हुडुक्का-शारंगदेव के द्वारा हुडुक्का वाद्य का वर्णन इस प्रकार से दिया गया है। हुडुक्का वाद्य की लंबाई एक हस्त (एक हाथ) की होती है। इसका व्यास अट्ठाईस अंगुल का होता है इसमे प्रयोग की गयी लकड़ी के काठ की मोटाई एक अंगुल की रखी जाती है, इसके दोनों दायें व बाएँ मुख का व्यास सात-सात अंगुल होता है। दोनों मुख मण्डल को चर्म से आच्छादित का बांध दिया जाता है जिसकी माप ग्यारह अंगुल होती है इसे एक अंगुल की मोटी चर्म की रस्सी से बांधा जाता है। इसके मण्डल मे छ: छिद्र किए जाते है जिनसे रस्सी को पिरोया जाता है। इसमे आगे के भाग मे तीन अर्गलाएं तथा पीछे के भाग मे दो अर्गलाएं रखी जाती है। तथा मध्य भाग मे पकड़ के लिए आकर्षण बंधन सूत्र होता है।

---

(1) जौहरी, डॉ० रेणु/ग्रंथ सारामृत/पृष्ठ-107
(2) शारंगदेव कृत/ संगीत रत्नाकर/अनुवादक सुभद्रा चौधरी/श्लोक-1020/पृष्ठ-508
(3) शारंगदेव कृत/ संगीत रत्नाकर/अनुवादक सुभद्रा चौधरी/अध्याय-6/श्लोक-1019-29/पृष्ठ-508
(4) पगलदास, रामशंकर/तबला कौमुदी/भाग-3/पृष्ठ-15
(5) शारंगदेव कृत/ संगीत रत्नाकर/अनुवादक सुभद्रा चौधरी/अध्याय-6/श्लोक-1026

गिरीश चंद्र के अनुसार-"मानो दो नंगाड़े पीछे से जोड़ दिये गए हो और उनका मुख चर्माच्छादित कर के रस्सी से बांध दिया गया हो"[1] हुडुक्का वाद्य के चौथाई भाग मे शब्द गुंजन के लिए छिद्र होते है। स्कन्ध पर धरण कर के उदार पट्टिका को बाएँ हाथ से पकड़ कर दायें हाथ से वादन किया जाता है।[2] हुडुक, हुडुक्का को आवज का ही पर्याय माना जाता है। शारंगदेव द्वारा हुडुक्का को स्कन्धवाज के नाम से संबोधित किया गया है, तथा इस वाद्य के देवता सप्तदेवी माता को माना है। आवज वादक को आऊजी तथा हुडुक्का वादक को हुडुकिया कहा जाता है।[3]

3:3:3:4 करटा- शारंगदेव के द्वारा करटा वाद्य का वर्णन इस प्रकार से दिया गया है। संगीत शास्त्रो से यह ज्ञात होता है कि करटा वाद्य मध्ययुगीन ताल वाद्य है। विद्वानो के मतानुसार करटा को ढोलक का परिवर्तित स्वरूप माना जाता है। इसके निर्माण के लिए विजयसार कि लकड़ी से वलयकार पिंड बनाया जाता है । यह इक्कीस से चौबीस अंगुल का होता है इसकी परिधि का व्यास चालीस अंगुल का होता है। स्वर मे उतार व चढ़ाव के लिए दोनों मुख पर तीन-तीन ताँत के टार को बांधा जाता है। इसमे कोमल चमड़े का प्रयोग कर के लोहो के कड़े के साथ मढ़ दिया जाता है। लोहे के कड़े मे चौहदा-चौहदा छेद कर के ढोलक की भांति मढ़ दिया जाता है।[4] एक एक छिद्र को छोड़ कर चमड़े की पट्टी लगाई जाती है तथा फिर बाकी छिद्रो मिस्टर पतले चमड़े की पट्टी बांधी जाती है। गले मे लटका कर पकड़ने के लिए चमड़े की तीन अंगुल मोटी चमड़े की पट्टी को बांध दिया जाता है तथा इसका वादन बेंत की डंडी से किया जाता है।[5] लाल मणि मिश्र के अनुसार "करटा" ढ़ोल का परिवर्तित प्रकार है।[6] संगीत रत्नाकर के अनुसार इस वाद्य के देवता चार्चिका देवी को माना गया है।[7]

3:3:3:5 घट- शारंगदेव द्वारा संगीत रत्नाकर मे घट वाद्य का विवरण दिया गया है। परन्तु इसका वाद्य का वर्णन प्राचीनकाल से ही प्राप्त होता है। भरतमुनि द्वारा दर्दर वाद्य का उल्लेख नाट्यशास्त्र मे प्राप्त होता है जिसे घट वाद्य के समान ही माना गया है।[8] शारंगदेव द्वारा घट वाद्य का वर्णन इस प्रकार से किया गया है कि घट बड़े उदर व छोटे मुख का वाद्य है। यह वाद्य चिकनी मिट्टी का बनाया जाता है तथा इसे अच्छी तरहा से पका कर इसके मुख को चमड़े से मढ़ कर कस कर बांध दिया जाता है। इस वाद्य का वादन वादक

---

(1) श्रीवास्तव, गिरीश चंद्र /पृष्ठ तालकोश/ -254
(2) मिश्र लाल मणि भारतीय संगीत वाद्य/ पृष्ठ-66
(3) शारंगदेव कृत/संगीत रत्नाकर/अनुवादक सुभद्रा चौधरी/पृष्ठ-521
(4) पटेल, जमुना प्रसाद/ताल वाद्य परिचय/पृष्ठ-59
(5) शारंगदेव कृत/ संगीत रत्नाकर/अनुवादक सुभद्रा चौधरी /छठा अध्याय/श्लोक-1078-1085
(6) मिश्र, लाल मणि/भारतीय संगीत वाद्य/ पृष्ठ-67
(7) भार्गव, अंजना/भारतीय संगीत मे वाद्यों का चिंतन/पृष्ठ-165
(8) मराठे, मनोहर लाल भाल चंद्र राव/ ताल वाद्य शास्त्र/पृष्ठ-92

दोनों हाथों से करता है।[1] डॉ० अर्चना भार्गव के अनुसार अच्छी तरह से पका हुआ छोटे मुख व बड़े उदर का चरमाच्छादित वाद्य जिसे दोनों हाथों से बजाया जाता है वह वाद्य ही घट है।[2]

3:3:3:6 घडस- शारंगदेव द्वारा संगीत रत्नाकर मे हुडुक्का के लक्षण को ही घडस का लक्षण बताया गया है।[3] सोमेश्वर द्वारा घडस के लक्षण का उल्लेख इस प्रकार से किया गया है कि इसका दाहिना मुख हुडुक्का के समान होता है।[4] इस वाद्य और हुडुक्का वाद्य मे अंतर यह है कि घडस का दायाँ मुख चरमाच्छादित होता है तथा बयान मुख रस्सियों से नियंत्रित किया जाता है दायें भाग का वादन हाथ से व बाएँ भाग का वादन अंगुलियों और अंगूठे के द्वारा किया जाता है तथा घडस के वादन मे वादक द्वारा मोम का प्रयोग किया जाता है।[5] वर्तमान मे घडस वाद्य का प्रयोग पूर्णत: समाप्त हो गया है।[6]

3:3:3:7 ढवस- शारंगदेव द्वारा संगीत रत्नाकर मे वर्णित यह वाद्य किस पेड़ की लकड़ी से बना होना चाहिए यह स्पष्ट नहीं है परन्तु इस वाद्य को रक्त चन्दन या खैर की लकड़ी का बनाया जाता होगा।[7] ढवस की लंबाई एक हस्त की होती है, तथा यह वाद्य अंदर से खोखलाव पोला होता है। वाद्य की गोलाई 39 अंगुल व इसके दोनों मुख को कठोर (कडे) चमड़े से मढ़ा जाता है। मराठे के अनुसार ढवस वाद्य के खोड़ का परिधि का व्यास चालीस अंगुल का होता है।[8] इसके दोनों मुख पर चमड़े का गजरा होता है, जिसके उपर सात छिद्र होते है। ढवस की पूड़ी के दोनों मुख पर कसा जाता है और डोरी की सहयता से कस कर बांध दिया जाता है। इस वाद्य का वादन गले मे लटका कर बाएँ हाथ से व दायीं ओर कुतूप पर लकड़ी के कोण से किया जाता है।[9] ढवस वाद्य के पाटाक्षर ढ़ं ढ़ं है। [10]

3:3:3:8 ढक्का- शारंगदेव द्वारा संगीत रत्नाकर मे ढक्का वाद्य को ढवस के समान ही माना गया है तथा इस वाद्य को धौंसा भी कहा जाता है। ढक्का के दोनों मुख का व्यास 13-13 अंगुल का होता है।[11] इसे बाएँ हाथ से बगल मे दबा कर दायें हाथ मे डंडी के आघात से बजाया जाता है।[1]

---

(1) शारंगदेव कृत/संगीत रत्नाकर/अनुवादक सुभद्रा चौधरी/छठा अध्याय/श्लोक-1019-29
(2) भार्गव, अंजना/भारतीय संगीत मे वाद्यों का चिंतन/पृष्ठ-166
(3) भारतीय संगीत वाद्य/लाल मणि मिश्र/पृष्ठ-68
(4) भार्गव, अंजना/भारतीय संगीत मे वाद्यों का चिंतन/पृष्ठ-166
(5) जौहरी, रेणु/ ग्रंथ सरामृत/ पृष्ठ-110
(6) शर्मा, महेंद्र प्रसाद/अवनद्ध वाद्य: सिद्धान्त एवं वादन परंपरा/पृष्ठ-26
(7) शारंगदेव कृत/संगीत रत्नाकर/अनुवादक सुभद्रा चौधरी /छठा अध्याय/श्लोक-1157-58
(8) मराठे, मनोहर लाल भाल चंद्र राव/ताल वाद्य शास्त्र/पृष्ठ-93
(9) शर्मा, महेंद्र प्रसाद/अवनद्ध वाद्य: सिद्धान्त एवं वादन परंपरा/पृष्ठ-29
(10) पटेल, जमुना प्रसाद/ताल वाद्य परिचय/पृष्ठ-59
(11) जौहरी, रेणु/ ग्रंथ सरामृत/पृष्ठ-110

3:3:3:9 कुडुक्का- शारंगदेव द्वारा संगीत रत्नाकर मे कुडुक्का वाद्य को अर्गला रहित हुडुक्का ही बताया गया है। जिसका वादन हाथ से व कोण द्वारा किया जाता था।[2] इस वाद्य के देवता क्षेत्रफल को माना गया है।[3]

3:3:3:10 कुडुवा- शारंगदेव द्वारा संगीत रत्नाकर मे कुडुवा वाद्य का वर्णन इस प्रकार से किया गया है कि इसके निर्माण मे बीजवृक्ष की लकड़ी का प्रयोग किया जाता है। भीतर से यह वाद्य खोखला व पोपला होता है। इसके दोनों मुख से बीच का भाग की परिधि 7-7 अंगुल की होती है। कुडुवा वाद्य के पूरे शरीर की लंबाई 21 अंगुल की होती है।[4]

3:3:3:11 रूंजा- शारंगदेव द्वारा संगीत रत्नाकर मे रूंजा वाद्य का वर्णन इस प्रकार से किया गया है कि रूंजा वाद्य दो अंगो का वाद्य है जिसका वर्णन मातंग मुनि द्वारा भी प्राप्त होता है। इसका निर्माण विजयसार कि लकड़ी से किया जाता है यह 18 अंगुला लंबा व मजबूत बनाया जाता है। इसके दोनों मुख ग्यारह-ग्यारह अंगुल के होते है इसको मुलायम चमड़े से कड़ो के साथ मढ़ा जाता है, तथा दोनों कड़ो को डोरियों के साथ आपस मे बांध दिया जाता है, और दोनों मुख को सुतलियों कि सहायता से कसा जाता है। रूंजा वाद्य को काँख मे दबा कर व गले मे लटका कर बजाया जाता है।[5] शारंगदेव द्वारा इस वाद्य के देवता भृंगी को माना है।[6]

3:3:3:12 डमरू-इस वाद्य का वर्णन संगीत रत्नाकर मे प्राप्त होता है परंतु वाद्य का वर्णन संगीत मकरंद के वाद्यों के साथ अध्याय के प्रथम भाग मे किया जा चुका है। पुनरावृति न हो इसलिए यहा डमरू का वरना नही किया जा रहा है।

3:3:3:13 डक्का- इस वाद्य का वर्णन संगीत रत्नाकर मे प्राप्त होता है इसको हुडुक्का वाद्य की जाति का वाद्य माना जाता है। यह दो मुख का वाद्य है, जिसकी लंबाई एक बालिश्त होती है तथा इसके मुख का व्यास आठ अंगुल प्रमाण का होता है।[7] इस वाद्य की लकड़ी के मुख पर चार चार तांबे की खुटिया या किले लगाई जाती है, जो दो अर्धमुखी व दो ऊर्ध्वमुखी होती है।[8] स्वर मे चढ़ाने के लिए इसमे छोटी-छोटी

---

(1) मिश्र, लाल मणि/भारतीय संगीत वाद्य/पृष्ठ-69
(2) शारंगदेव कृत/संगीत रत्नाकर/अनुवादक सुभद्रा चौधरी /छठा अध्याय/श्लोक-1097
(3) भार्गव, अंजना/भारतीय संगीत मे वाद्यों का चिंतन/पृष्ठ-167
(4) जौहरी, रेणु/ ग्रंथ सरामृत/ पृष्ठ-111
(5) पटेल, जमुना प्रसाद/ताल वाद्य परिचय/पृष्ठ-62
(6) शारंगदेव कृत/संगीत रत्नाकर/अनुवादक सुभद्रा चौधरी/छठा अध्याय/श्लोक-1104
(7) शारंगदेव कृत/संगीत रत्नाकर/अनुवादक सुभद्रा चौधरी /छठा अध्याय/श्लोक-1114-15-20
(8) जौहरी, रेणु ग्रंथ/सरामृत/पृष्ठ-112

कड़िया लगाई जाती है। इस वाद्य के अन्य लक्षण हुडुक्का के समान ही होते है। संगीत रत्नाकर के अनुसार इस वाद्य के देवता विध्यवासिनी को माना जाता है।[1]

3:3:3:15 मण्डिडक्का-संगीत रत्नाकर के अनुसार मण्डिडक्का को डक्का का ही दूसरा रूप माना जाता है।[2] परंतु मण्डिडक्का की बनावट की बनावट मे कुछ भिन्नता है। मण्डिडक्का वादी के पूरे भाग की लंबाई 16 अंगुल प्रमाण की होती है। इस वाद्य के दोनों मुख का व्यास आठ अंगुल होता है इस वाद्य मे डक्का की भांति तांबे की कील लगाई जाती है इसके मध्य भाग मे अर्गलाए नहीं होती है। इसमे दो-दो छल्ले लगाकर डोरियों लगाई जाती है। इसका वादन हाथ व कुतूप (लकड़ी के आघात) द्वारा चार्यागान व शक्ति पुजा के समय मुख्य रूप से किया जाता था ।[3]

3:3:3:16 डक्कुली- डक्कुली वाद्य का वर्णन कुछ ही ग्रंथ मे प्राप्त होता है। इस वाद्य के निर्माण के लिए कांसा, हाथी दाँत, बैल के सींग का प्रयोग किया जाता है।[4] डक्कुली की लंबाई पाँच अंगुल व दोनों मुख का व्यास चार-चार अंगुल होता है। इसके दोनों मुख को कांसे ब लोहे का कडा लगा कर मढ़ा जाता है और पाँच छिद्रो मे डोरी को पिरोया जाता है जो न ढीली राखी जाती है न कसी हुयी रखी जाती है।[5] इसके वादन की विधि इस प्रकार से बताई गयी है। इसके मध्य भाग मे कमरबन्ध की भांति डोरा बंधा जाता है जिसे अनामिका मे लपेटकर मध्यमा व तर्जनी से नीचे सीएचकेआर पर इस प्रकार रखी जाती है की अंगूठा दूसरे चक्र पर ऊपर की ओर रहे इस प्रकार से इसे पकड कर चमड़ा लगे छल्ले से खीचते हुए वादन किया जाता है।

3:3:3:17 सेल्लुका- संगीत रत्नाकर मे सेल्लुका वाद्य का वर्णन इस प्रकार से प्राप्त होता है कि यह वाद्य आधुनिक नाल की जाति का वाद्य प्रतीत होता है।[6] सेल्लुका की लंबाई 26 अंगुल तथा परिधि का व्यास 30 अंगुल की होता है। इसके निर्माण के लिए विजयसार व बीजवृक्ष के काठ का प्रयोग कर के उसका खोखला पिण्ड बनाया जाता है। इसके दोनों मुख 10-10 अंगुल के होते है।[7] इसके मुख पर एक अंगुल की मोटाई के बराबर बेल के वलयकार कड़े लगाए जाते है, जिनमे छ: छिद्र कर के रस्सी से कस कर पिरो दिया जाता है तथा बाए मुख को हाथ से व दायें मुख को किसी वस्तु के आघात से बजाया जाता है।

---

(1) शारंगदेव कृत/संगीत रत्नाकर/अनुवादक सुभद्रा चौधरी/छठा अध्याय/श्लोक-1114-20/पृष्ठ-528
(2) शारंगदेव कृत/संगीत रत्नाकर/अनुवादक सुभद्रा चौधरी/छठा अध्याय/श्लोक-1121-1122
(3) शारंगदेव कृत/संगीत रत्नाकर/अनुवादक सुभद्रा चौधरी/छठा अध्याय/पृष्ठ-530
(4) पटेल, जमुना प्रसाद/ताल वाद्य परिचयपृष्ठ-61
(5) जौहरी, रेणु/ ग्रंथ सरामृत/पृष्ठ-113
(6) पटेल, जमुना प्रसाद/ताल वाद्य परिचय/ पृष्ठ-65
(7) जौहरी, रेणु/ग्रंथ सारामृत/पृष्ठ-113

3:3:3:18 झल्लरी- झल्लरी वाद्य का वर्णन पिछले अध्याय नाट्यशास्त्र के अनुसार किया जा चुका है परंतु यहा इसका वर्णन संगीत रत्नाकर के अनुसार किया जा रहा है। इस वाद्य को वर्तमान मे ख़ंजरी या चंग वाद्य के समान माना जाता है।[1] लकड़ी का बना यहा वाद्य वजन मे 26 पल का होता है इसकी लंबाई 13 अंगुल तथा इसके मुख का व्यास 14 अंगुल का होता है। मराठे द्वारा 26 पल के वजन को डेड किलो का माना गया है।[2] झल्लरी वाद्य को भाण्ड वाद्य ही माना जाता है, तथा इसको भाण्ड की भांति ही गले मे लटका कर बजाया जाता है।

3:3:3:19 भाण- संगीत रत्नाकर मे भाण्ड वाद्य का वर्णन प्राप्त होता है। इसका वजन साड़े सात सौ ग्राम या (1 किलो 600 ग्राम) होता है।[3]इस वाद्य की गहराई 18 अंगुल व परिधि की नाप 18 अंगुल की होती है। इसको हाथ मे लटकाकर वादन किया जाता है। तथा पकड़ के लिए दो छिद्र कर के डोरी से बांध दिया जाता है। इसके एक मुख को चर्माच्छादित रखा जाता है तथा बाएँ हाथ से पकड़ कर दायें हाथ से वादन किया जाता है। इस वाद्य के शेष लक्षण झल्लरी के समान ही माने जाते है।[4]

3:3:3:20 त्रिवली- त्रिवली लकडी का बना एक हाथ लंबा दो मुखी वाद्य है इसके दोनों मुख 7-7 अंगुल के व्यास के है यह वाद्य भीतर से खोखला होता है दोनों मुख को कोमल चमड़े से मढ़ा जाता है लोहे के कड़े के साथ लपेट कर बांध दिया जाता है इसके लौह निर्मित कड़ो मे छिद्र कर के कच्चे सूत की डोरी या चमड़े की बद्धि से बांध कर कस दिया जाता है। इसे कंधे पर लटकाकर दोनों हाथो से वादन किया जाता है।[5] संगीत रत्नाकर द्वारा इस वाद्य के देवता त्रिपुर को माना जाता है। इस वाद्य को त्रिकुल्पा नाम से भी जाना जाता है।[6]

3:3:3:21 दुन्दुभि- दुन्दुभि वाद्य का वर्णन संगीत रत्नाकर मे प्राप्त होता है। यह वाद्य आकार मे बड़ा व गंभीर ध्वनि वाला वाद्य है। इसके भार को बढ़ाने के लिए इसमे कांसा की धातु को डाला जाता है।[7] दुन्दुभि का ढांचा आम की लकड़ी से बनाया जाता है इसको एक अंगी वाद्य कहा जाता है इसमे वलय का प्रयोग नहीं किया जाता है इसके मुख पर चमड़ी मढ़ कर चारो ओर से कस कर बांध दिया जाता है। इसका वादन

---

(1) शारंगदेव कृत/संगीत रत्नाकर/अनुवादक सुभद्रा चौधरी/छठा अध्याय/श्लोक-1137/पृष्ठ-12
(2) पटेल, जमुना प्रसाद/ताल वाद्य परिचय/ पृष्ठ-88
(3) जौहरी, रेणु/ग्रंथ सारामृत/पृष्ठ-114
(4) शारंगदेव कृत/संगीत रत्नाकर/अनुवादक सुभद्रा चौधरी/छठा अध्याय/श्लोक-1140
(5) शारंगदेव कृत/संगीत रत्नाकर/अनुवादक सुभद्रा चौधरी/छठा अध्याय/श्लोक-1142
(6) शारंगदेव कृत/संगीत रत्नाकर/अनुवादक सुभद्रा चौधरी/छठा अध्याय/श्लोक-1138-39/पृष्ठ-532-34
(7) शारंगदेव कृत/संगीत रत्नाकर/अनुवादक सुभद्रा चौधरी/छठा अध्याय/श्लोक-1147/पृष्ठ-534

कोण से आघात कर के किया जाता है। मांगलिक कार्यों, विजय उत्सव तथा पूजाघरो मे इसका वादन किया जाता है।[1]

3:3:3:22 भेरी-इस वाद्य का वर्णन संगीत रत्नाकर मे भी प्राप्त होता है। हिन्दी शब्द सागर मे इसका अर्थ ढ़ोल या नंगड़ा बताया गया है।[2] भेरी वाद्य को मृदंग की भांति मृदंग के समान आकार वाला अवनद्ध वाद्य माना जाता है।[3] लाल मणि मिश्र द्वारा पुस्तक मे यह कहा गया है कि यह वाद्य ना तो ढ़ोल है ना नंगाड़ा है ना ढक्का[4] इस वाद्य कि बनावट के विषय मे संगीत रत्नाकर मे दिया गया है कि यह वाद्य तांबे कि धातु से निर्मित तीन बालिश्त लंबा वाद्य है इसके मुख का व्यास 24 अंगुल और कड़े से युक्त होता है। चर्माच्छादित वलय मे छिद्र कर के डोरी से कस कर स्वर मे नियंत्रित किया जाता है। दायें हाथ से कोण द्वारा तथा बाएँ हाथ से हाथ द्वारा इसका वादन किया जाता है।[5]

3:3:3:23 निःसाण- संगीत रत्नाकर मे निःसाण या निसार वाद्य का वाद्य का वर्णन प्राप्त होता है यह वाद्य कांसे व तांबे कि धातु से निर्मित वाद्य है इस वाद्य कि तीन श्रेणियाँ है। उत्तम जो कास्य से निर्मित होती है माध्यम जो ताम्र से निर्मित होती है, अधम या निम्न जो लोहे से निर्मित होती है।[6] इसकी आकृति आधे जौ(यव) के समान ऊपरी भाग चौड़ा व नीचे का भाग पतला होता है। इसमे ढांचे को भार देने के लिए कांसा भरा जाता है इसकी पूड़ी मे छेद कर के बद्धि लगाकर पेंदे मे लगे कड़े से पिरो दिया जाता है जिससे पूड़ी तनी रहे। इसका वादन चमड़े लगे कोण से किया जाता है।[7] इस वाद्य का वादन मुख्य रूप से युद्ध की घोषणा, युद्ध आरंभ के लिए किया जाता था।[8] लाल मणिमिश्र के अनुसार निसान वाद्य दुंदुभि जाति का वाद्य है तथा निसान से मिलता जुलता वाद्य दमामा था, जो मध्ययुग मे नक्कारा खानो मे प्रयोग किया जाता था।[9]

3:3:3:24 तुम्बकी- तुम्बकी वाद्य को शारंगदेव द्वारा नि:साण वाद्य का ही प्रकार माना है। परंतु तुम्बकी नि:साण से आकार व ध्वनि मे अल्प ही भिन्न होगा।[10]

---

(1) शारंगदेव कृत/संगीत रत्नाकर/अनुवादक सुभद्रा चौधरी/छठा अध्याय/पृष्ठ-534
(2) शर्मा, महेंद्र प्रसाद/अवनद्ध वाद्य: सिद्धान्त एवं वादन परंपरा/पृष्ठ-34
(3) मराठे, मनोहर लाल भाल चंद्र राव/ताल वाद्य शास्त्र/पृष्ठ-91
(4) मिश्र, लाल मणि /भारतीय संगीत वाद्य/ पृष्ठ-86
(5) शारंगदेव कृत/संगीत रत्नाकर/अनुवादक सुभद्रा चौधरी/छठा अध्याय/श्लोक-1150
(6) शारंगदेव कृत/संगीत रत्नाकर/अनुवादक सुभद्रा चौधरी/छठा अध्याय/श्लोक-1153
(7) शारंगदेव कृत/संगीत रत्नाकर/अनुवादक सुभद्रा चौधरी/छठा अध्याय/श्लोक-1152-56
(8) भार्गव, अंजना/भारतीय संगीत मे वाद्यों का चिंतन/पृष्ठ-172
(9) मिश्र, लाल मणि /भारतीय संगीत वाद्य/पृष्ठ-78
(10) शारंगदेव कृत/संगीत रत्नाकर/अनुवादक सुभद्रा चौधरी/छठा अध्याय/श्लोक-1158/पृष्ठ-536

3:3:4 आचार्य पार्श्वदेव कृत संगीत समय सार -आचार्य पार्श्व देव जैन दिगंबर थे तथा संगीत समय सार जैन मत का प्रसिद्ध व प्राचीन ग्रंथ है। पार्श्वदेव का समय काल 13वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध व 14वीं शताब्दी माना जाता है। पार्श्व देव को शारंग देव के समकालीन माना जाता है। आचार्य पार्श्वदेव द्वारा रचित ग्रंथ संगीत समय सार मे नौ अध्याय है। छठे अध्याय षठाधिकरण मे वाद्यों का उल्लेख प्राप्त होता है।

ततं ततोऽवनद्धं च धनं च सुषिरं तथा।
चतुर्विधमिदं प्राहुरातोचं वाद्यवेदिनः॥
ततं तंत्रीगतं ज्ञेयमवनद्धं तु पौष्करम् ।
कांस्यं घनमिति प्रोक्तं सुषिरं सुषिरात्मकम् ॥(1)

अर्थात् चार प्रकार के आतोघ वाद्य मानते हुए तत् अर्थात् तार युक्त वाद्य, अवनद्ध अर्थात् पुष्कर वाद्य, घन अर्थात् कांस्य के ताल वाद्य, सुषिर वाद्य अर्थात् वायु व छिद्र युक्त वाद्य का वर्णन है।(2)

वीणा चालावणी चैव किन्नरी लघुपूर्विका।
वृहत्किन्नरिका चैव शकनीत्यादिगन्तरम् (?) ॥(3)

तार वाद्यों मे वीणा, आलावणी, लघु किन्नरी, वृहत्किन्नरी, शकनी इत्यादि का वर्णन प्राप्त होता है।

पटहश्च हुडुक्का च ढक्का च तदनन्तरम् ।
मृदंग: करडेत्याद्यमवनद्धमुदाहृतम् ॥
तालश्च कांस्यतालश्च घण्टिका क्षुद्रघण्टिका ।
पट्टश्च शुक्तिरित्याद्यं घनवाद्यमुदाहृतम् ॥
एकहस्तेन हस्ताभ्यां कोणेनाउड.लिभिस्तथा।(4)

अवनद्ध वाद्यों मे पटह, हुडुक्का, ढक्का, मृदंग, करडा(करटा) आदि। घन-वाद्यों मे कास्य के ताल वाद्य घण्टिका, क्षुद्रघण्टिका, पट्ट, शुक्ति आदि है। इन वाद्यों का वर्णन विस्तृत रूप से पहले किया जा चुका है पुनवृत्ति न हो इसलिए यहा वाद्यों के विषय मे संक्षिप्त मे बताने का प्रयास किया है।

3:3:4:1 करडा (करटा)- यह द्विमुखी वाद्य है, जिसका निर्माण विजयसार की लकड़ी से किया जाता है। इस वाद्य का वादन बेंत की लकड़ी से किया जाता है।

---

(1) पार्श्वदेव विरचित/संगीत समय सार/श्लोक-2,3/पृष्ठ-138
(2) पार्श्वदेव विरचित/संगीत समय सार/पृष्ठ-138-139
(3) पार्श्वदेव विरचित/संगीत समय सार/श्लोक-4/पृष्ठ-138-139
(4) पार्श्वदेव विरचित/संगीत समय सार/श्लोक-5,6/पृष्ठ-138-139

3:3:4:2 पटह- पटह एक अंगी वाद्य है, यह मार्गी व देशी दो प्रकार का होता है। मार्गी पटह का वादन ऊर्ध्वमुखी व देशी पटह का वादन कोण द्वारा किया जात है।

3:3:4:3 हुडुक्का- हुडुक्का द्विमुखी एक अंगी वाद्य है इसका वादन मध्यभाग उदर पट्टिका को बाए हाथ मे पकड़ कर दायें हाथ से वादन किया जाता है।

3:3:4:4 ढक्का- ढक्का ढवस के समान वाद्य है इसका वादन दाहिने हाथ द्वारा दण्डी से किया जाता है।

3:3:4:5 मृदंग- मृदंग द्विमुखी वाद्य एक अंगी वाद्य है, इसका वादन दोनों हाथो द्वारा किया जाता है।

3:3:5 सुधाकलश कृत संगीतोपनिषद्सारोद्धार- सुधाकलश कृत संगीतोपनिषद्सारोद्धार ग्रंथ 14वीं शताब्दी 1350 ई० मे लिखा गया संगीत व भारतीय कलाओं को स्मरपित ग्रंथ है। सुधा कलश जैन आचार्य वाचनाचार्य श्वेतांबर जैन थे। इस ग्रंथ की चार पांडुलिपियाँ उपलब्ध है। इस ग्रंथ को छ अध्यायों गीत प्रकशन,ताल प्रकाशन, गणस्वररागादि प्रकाशन, चतुर्विद वाद्य प्रकाशन, नृत्यांगोपांगप्रत्यंग प्रकाशन, नृत्यपद्धति प्रकाशन। इस ग्रंथ के चतुर्थ अध्याय चतुर्विध प्रकाशन के अंतर्गत वाद्यों के चार प्रकार तत, घन, सुषिर और अवनद्ध का अध्ययन प्राप्त होता है। आनद्ध वाद्यों मे मुरज, मृदंग, ढक्का, निस्साण, त्रिवली, पटह जो चर्माछादित वाद्य है। इस ग्रंथ मे जैन मत के अनुसार मुरज वाद्य को भगवान शिव द्वारा निर्मित व शंख से उत्पन्न वाद्य मानते है।[1] और ऐसा माना जाता है, कि भगवान शिव द्वारा मुरज वाद्य का निर्माण नृत्य व नाट्य के लिए किया गया था।[2]

इस ग्रंथ मे मुरज वाद्य के 35 पाट शब्द बताए गए है जिनमे पाँच मुख्य पाट नागबन्ध, स्वस्तिक, शुद्ध, अलग्नक और समखली तथा इस पाँच पाटो के सात-सात प्रकार है जिससे यह पाटो कि संख्या 35 हो जाती है। सुधाकलश द्वारा ग्रंथ मे देवताओं का निवास हाथों मे इस प्रकार से बताते हुए कहा है कि ब्रह्मा का निवास अंगुशठ मे होता है, शिव का निवास तर्जिनी मे होता है विष्णु का निवास मध्यमा मे होता है, सभी देवताओं का निवास अनमिका मे होता है, ऋषियों का निवास कनिष्ठा मे होता है, पूर्ण हस्त पाट के राजा सूर्यदेव को माना जाता है। हस्त के पार्शव भाग मे चंद्र देव स्थित होते है, दायें हाथ मे अग्नि देवता तथा बाएँ हाथ मे वरुण देव विराजमान माने जाते है। इसके पश्चात संगीतोपनिषद्सारोद्धार ग्रंथ मे अन्य अवनद्ध वाद्यों

(1) काव्या, डॉ० लावण्या कीर्ति सिंह/भारतीय संगीत ग्रंथ/पृष्ठ-198-199
(2) काव्या, डॉ० लावण्या कीर्ति सिंह/भारतीय संगीत ग्रंथ/पृष्ठ-198-199

मे ढक्का, नि:स्वन, त्रिवली, आउजा, धाउजा, खाऊजा, पाउजा, ढोल्ल, तब्ल, डंफ, टमकी, डउडी, डमरुका, बुक्का, दुद्याडी, कुण्डली, घट इत्यादि वाद्यों का उल्लेख प्राप्त होता है।[1]

3:3:6 राणा कुंभा कृत संगीत राज-राणा कुंभा का काल पंद्रहवीं शताब्दी 1433-1468 ई० का माना जाता है।[2] कुंभा द्वारा रचित यह ग्रंथ संगीत का अतुल्य ग्रंथ माना जाता है। महाराणा कुंभा द्वारा अनेक ग्रंथो कि रचना कि गयी है परंतु संगीत राज प्रमुख व वृहत ग्रंथ माना जाता है। यह ग्रंथ पाँच अध्यायों मे विभाजित है अध्यायों को कोश कि संज्ञा से संबोधित किया गया है।[3] जो इस प्रकार से है-पाठ्यरत्न कोश, गीत रत्नकोश, वाद्य रत्नकोश, नृत्य रत्न कोश रस रत्न कोश। संगीत राज के तृतीय अध्याय वाद्य रत्न कोश मे वाद्य के चार प्रकारो का वर्णन प्राप्त होता है। तत, अवनद्ध घन एवं सुषिर वाद्य, अवनद्ध वाद्यों मे पटह, हुडुक,घट्ट, डमरू, भाण्ड, दुंदुभि, निसाव आदि वाद्यों का विवरण लक्षण सहित प्राप्त होता है।[4] संगीत राज ग्रंथ मे संगीत रत्नाकर वाद्यध्याय व तालध्याय को आधार मानते हुए उसी के तथ्यों का वर्णन किया गया है।

3:4 संगीत मकरंद में वर्णित अवनद्ध वाद्यों की उपादेयता

अवनद्ध वाद्य अर्थात् वह वाद्य जिनका मुख चर्माछादित होता है। तथा प्रहार से ध्वनि उत्पन्न होती है, ऐसे वाद्यों को अवनद्ध वाद्य कहा जाता है। संगीत व नाट्य से संबन्धित संगीत का सम्पूर्ण ग्रंथ भरत कृत नाट्यशास्त्र मे एक सौ प्रकार के अवनद्ध वाद्यों का उल्लेख प्राप्त होता है। यह ग्रंथ साक्ष्य है, कि अवनद्ध वाद्यों का प्रचलन व महत्व अति प्राचीन काल से निरंतर चला आ रहा है। कुछ शोध के अनुसार ऐसा माना जाता है, कि वर्तमान मे चार सौ से भी अधिक प्रकार के अवनद्ध वाद्यों का प्रयोग सम्पूर्ण देशभर मे प्रचलित है। वर्तमान मे अवनद्ध वाद्यों मे तबला, पखवाज़, मृदंगम्, तविल, गंजीरा, ढोलक, नंगाड़ा, दुक्कड, ख़ंजरी, नाल, ड़फ इत्यादि ऐसे वाद्य है, जिनका प्रयोग आवश्यकतानुसार हो रहा है। संगीत के विभिन्न आधार ग्रन्थों मे भी अवनद्ध वाद्यों का वर्णन प्राप्त होता है। इस अध्याय के अंतर्गत शोधार्थी द्वारा संगीत मकरंद के अवनद्ध वाद्यों व अन्य वाद्यों का विवरण दिया गया है। देवर्षि नारद द्वारा रचित संगीत मकरंद ग्रंथ मे संगीत की सभी विधाओं पर प्रकाश डाला गया है। संगीत मकरंद के प्रथम अध्याय संगीतध्याय के चतुर्थ पाद मे वाद्य विशेष के अंतर्गत वाद्यों का वर्णन प्राप्त होता है, जिसमे सुषिर व अवनद्ध वाद्यों का नाम इस प्रकार से दिये गए है। सुषिर वाद्यों मे शृङ्गं, कहला, मुखरिका, उडु, मन्द्रा, करणा आदि। अवनद्ध वाद्यों मे मृदङ्ग, ददुर्र, पणव, झर्झरी, पटह, आलिङ्ग, ढक्का, डमरुगा, मडु, झर्झर, डिण्डिमा, कटका।

---

(1) काव्या, डॉ० लावण्या कीर्ति सिंह/भारतीय संगीत ग्रंथ/पृष्ठ-199
(2) कुम्भ कर्ण महिमेन्द्रम कृत/ संगीत राज (पाठ्यरत्न कोश) पृष्ठ-355
(3) काव्या, डॉ० लावण्या कीर्ति सिंह/भारतीय संगीत ग्रंथ/पृष्ठ-206
(4) काव्या, डॉ० लावण्या कीर्ति सिंह/भारतीय संगीत ग्रंथ/पृष्ठ-216

अतिप्राचीन काल से मध्यकाल तक आते-आते अवनद्ध वाद्यो का विकासक्रम विस्तार पूर्वक निरंतर परिवर्तन के साथ चलता रहा है कोई भी संस्कृत या संगीत ग्रंथ अवनद्ध वाद्यो के वर्णन से अछूते नहीं है फिर वह वेद हो या मध्य काल का कोई ग्रंथ । अवनद्ध वाद्यों की आलौकिकता अगम्य है अवनद्ध वाद्यों का क्रमिक विकास देखे तो अति प्राचीन काल से ही दुंदुभि, डमरू, ढक्का, इत्यादि वाद्य निर्मित हो चुके यह कि इनके विकास क्रम को झुठलाया नहीं जा सकता। प्रत्येक चरण पर पड़ाव आए परन्तु ऋषि मुनियों के अनुसंधान ने इस क्रम को नवीन दिशा प्रदान की स्वाति मुनि द्वारा पुष्कर वाद्यों कि कल्पना व निर्माण भारतीय अवनद्ध वाद्यों के लिए महानतम खोज है। प्रारम्भिक अवस्था के अवनद्ध वाद्यों मे लेपन की व्यवस्था का आभाव था परंतु एक पक्षीय वाद्य स्वयं मे पूर्ण विकसित थे। इसी क्रम मे आगे बढ़ते हुए भरतमुनि द्वारा नाट्यशास्त्र मे एक सौ से अधिक वाद्यों के प्रचलित होने के बारे मे बताया है तथा पुष्कर वाद्य मृदंग, पणव व दर्दुर का विस्तृत वर्णन किया है। भरत मुनि द्वारा पुष्कर वाद्यों कि तरह अन्य अवनद्ध वाद्यों के स्वर मे मिलाना व पाटाक्षरों व वादन विधि भी भिन्न नही होती थी इसलिए पुष्कर वाद्यों का ज्ञान तथा वादन सवोत्तम है। अवनद्ध वाद्यों कि वादन विदी उसके मूल मे ही विकसित थी जो वर्तमान मे और अधिक विकसित व प्रचलित ही गई। ऐसा माना जाता है कि वर्तमान मे लगभग 280 प्रकार के अवनद्ध वाद्य सम्पूर्ण देश मे प्रचलित है।[1] जिनमे दो मुख वाले वाद्यों मे मृदंग, ढोलक, खोल, मर्दल, हुडुक्का, डमरू इत्यादी। एक मुख वाले वाद्यों मे ख़ंजरी, घट, करचक्र, नगाड़ा, तबला इत्यादि वाद्य जिनके विभिन्न स्वरूप प्राप्त होते है। यह सभी वाद्य भारतीय सभ्यता की धरोवर है। जिन वाद्यों मे किसी भी प्रकार का लेपन किया जाता है वह वाद्य शुद्ध रूप से भारतीय वाद्य है। प्राचीन काल से मध्यकाल व वर्तमान काल तक वाद्यों कि बनावट मे परिवर्तन हुआ है तो वादन विधि के विषय पर चर्चा करे तो कुछ तथ्यो के अनुसार लगता है कि प्राचीन काल मे जिन पाटाक्षरों का प्रयोग मृदंग आदि वाद्यों किया जाता था उन पर मध्य काल तक आते-आते बढ़ता गया और वर्तमान मे मृदंग के बोलो के रूप मे दिखने लगा जिसका प्रत्यक्ष उदाहरण मृदंग वाद्य के पाटाक्षरों से कुछ भिन्नता रखते हुए तबला वाद्य के पाटाक्षर बने। इस प्रकार से देखा जाए तो प्राचीन काल से अब तक पाटाक्षर व बोलो के निर्माण मे चार बार परिवर्तन हुआ है।[2]

भरतमुनि द्वारा नाट्यशास्त्र मे मृदंग के पाटाक्षर को सर्वोत्तम बताते हुए पणव व दर्दुर वाद्य के कुछ भिन्न स्वतंत्र पाटाक्षर बताए है इसके बाद मध्यकाल तक आते-आते मृदंग और पटह वाद्य के पाटाक्षर को सर्वोच्च माना गया तथा अब वर्तमान मे मृदंग के साथ तबला वाद्य के बोलो को वही सर्वोच्च स्थान प्राप्त हुआ। वर्तमान

(1) मिश्र, लाल मणि/भारतीय संगीत वाद्य/पृष्ठ-210
(2) मिश्र, लाल मणि/भारतीय संगीत वाद्य/पृष्ठ-210

काल मे अब इन्ही बोलो का प्रयोग अन्य अवनद्ध वाद्यों मे भी किया जाता है। प्राचीन काल मध्य काल तथा वर्तमान काल के बोलो की तालिका लालमणि मिश्र के अनुसार[1]

प्राचीन काल के बोल	**मध्यकाल के बोल**
मटकत घिघघटेघेघघोट्ट मंधि घंघन घिघि	ननगिड। गिडदगि
घड गुटु गुटुमघे दो चिंच दुधि दुईंधि	ननग्डिदि, नखुं नखुं
किंकाकिटुभेदकितां किंकेकितांद तसितां गुटुग	ख च ट किट, घिकट घिकट, थों गिणि।
मद्धि कुट घेघेमथिद्धिध खुखुणंधे घोटत्थिमट	थों थां गि॥, थिरकि थों , नगि झें नगि झें
वर्तमान काल मे मृदंग के बोल	**वर्तमानकाल मे तबला के बोल**
धुमकिट धुमकिट तकिटत का, किट,	धगिनधा ऽगधग धिनाऽध गिनधग धेनेगेने
धुमकिट तकधुम किटतक गदिगन	धातिरकिटध गिनधग तिनगिन
धा देत् देत् धुमकिट तकधुम, किटतक गदिगन धा देत् देत्	तगिन ता ऽगतग तिनाऽतगिनतक धिनगिन
धुमकिट तकधुम किटतक गदिगन	धातिरकिटध गिनधग धिनगिन

(1) मिश्र, लाल मणि/भारतीय संगीत वाद्य/पृष्ठ-210